आधे अधूरे

मोहन राकेश

© १९६७, [illegible] प्रकाशन, नई दिल्ली

मूल्य
पांच रुपये

प्रकाशक
श्री ओमप्रकाश,
राधाकृष्ण प्रकाशन,
४–१४ रूपनगर,
दिल्ली–७

मुद्रक
लीडर प्रेस,
इ[illegible]

विषय

२५	..	प्यार
३१	..	[illegible] की एक [illegible]
४१	..	[illegible] का [illegible]
६२	..	[illegible]
६६	..	पोस्टमास्टर
८१	..	[illegible] और [illegible]
१०५	..	एक टूटा हुआ [illegible]
१२१	..	[illegible]
१३४	..	[illegible]
१३६	..	[illegible]
१४७	..	बन्दी
१५७	..	शिकार
१६२	..	खंडहर
१७३	..	परमात्मा का कुत्ता

इन्सान के खंडहर

१९५०

इन्सान के खंडहर [खंडहर]

एक आलोचना

दोराहा

धुंधला दीप

लक्ष्यहीन

वासना की छाया में

मरुस्थल

सीमाएं

मिट्टी के रंग

ऊर्मिल जीवन

कंवल

नये बादल

१९५७

नये बादल

उसकी रोटी

सौदा

मलबे का मालिक

मन्दी

फटा हुआ जूता

अपरिचित

हवामुर्ग़

भूखे

शिकार

उलझते धागे

छोटी-सी बात

एक पंखयुत ट्रेजेडी

जानवर और जानवर

१९५८

काला रोज़गार

आर्द्रा

मिस्टर भाटिया

परमात्मा का कुत्ता

आख़िरी सामान

क्लेम

मवाली

जानवर और जानवर

एक और ज़िन्दगी

१९६१

सुहागिनें

गुनाहे बेलज्जत

मिस पाल

आदमी और दीवार

वारिस

हक़ हलाल

बस-स्टैंड की एक रात

जीनियस

एक और ज़िन्दगी

फ़ौलाद का आकाश

१९६६

ग्लास-टैंक

सोया हुआ शहर

जंगला

पाँचवें माले का फ़्लैट

फ़ौलाद का आकाश

चौग़ान

सेफ़्टी पिन

ज़ख़्म

एक ठहरा हुआ चाक़

भूमिका : 'नये बादल'

आज कहानी के सम्बन्ध में एक नयी दृष्टि पनप रही है। उससे कहानी के प्रभाव का स्वरूप भी बदल गया है और जिन स्रोतों से एक लेखक कहानी लिखने की प्रेरणा लेता है, उनका भी काफी विस्तार हुआ है। हमारे चारों ओर जीवन का हर खण्ड किन्हीं प्रभावों से चालित है। हम उन प्रभावों को पहचान सकें तो हर छोटे-से-छोटे खण्ड की अपनी एक कहानी है। जिस राह से दो पैर गुजर जाते हैं, उस राह की धूल में उन पैरों से एक कहानी लिखी जाती है। हर जीवित इन्सान के चेहरे पर एक कहानी लिखी रहती है, जो उसके चेहरे की झुर्रियों में, उसकी पलकों के उठने-गिरने में और उसके माथे की सलवटों में पढ़ी जा सकती है। मेरे दरवाजे पर जो चिक लगी है, वह उन हाथों की कहानी है जो धूप में बैठकर उसे रँगते रहे हैं। मेरे फर्श पर बिछी दरी शायद किसी प्रणय की कहानी है जो धागों को आपस में उलझाते हुए दो हृदयों को भी उलझा गया था। इस समय *एक व्यक्ति रद्दी खरीदने के लिए धूप में सड़कों के चक्कर काट रहा है।* इस व्यक्ति के जीवन में साँझ और रात भी आती है जब वह कुछ निजी लोगों के छोटे से दायरे में बैठकर हँसता है, या माथे पर हाथ रखे हर पास आने वाले व्यक्ति पर झल्लाता है। इसकी चारपाई पर मैला खेस बिछा है, इसके लड़के की आँख दुखनी आयी है, इसके रसोईघर की दीवारें धुएँ से काली हो गयी हैं, पर इसकी पत्नी के चेहरे पर फिर भी एक मुसकराहट है। वह इसके हाथ में इसकी बहन का खत दे देती है कि उसके पति ने फिर उसे बुरी तरह पीटा है और वह उस घर को छोड़कर इन लोगों के पास आ रहना चाहती है—यह कहानी एक व्यक्ति की ही नहीं, उसके पूरे समय की भी है। कहानी का प्रत्यक्ष कैनवस छोटा और साधारण हो सकता है, पर जिस परोक्ष की ओर वह संकेत करती है, वह छोटा और साधारण नहीं है।

पिछले कुछ वर्षों में हम सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन की जिस

इन्सान के खंडहर
१९५०
इन्सान के खंडहर [खंडहर]
एक आलोचना
दोराहा
धुंधला दीप
लक्ष्यहीन
वासना की छाया में
मरुस्थल
सीमाएं
मिट्टी के रंग
ऊर्मिल जीवन
कंवल
नये बादल
१९५७
नये बादल
उसकी रोटी
सौदा
मलबे का मालिक
मन्दी
फटा हुआ जूता
अपरिचित
हवामुर्ग़
भूखे
शिकार
उलझते धागे
छोटी-सी बात
एक पंखयुत ट्रेजेडी
जानवर और जानवर
१९५८
कालारोज़गार
आर्द्रा
मिस्टर भाटिया
परमात्मा का कुत्ता
आख़िरी सामान
क्लेम
मवाली
जानवर और जानवर
एक और ज़िन्दगी
१९६१
सुहागिनें
गुनाहे बेलज्ज़त
मिस पाल
आदमी और दीवार
वारिस
हक़ हलाल
बस-स्टैंड की एक रात
जीनियस
एक और ज़िन्दगी
फ़ौलाद का आकाश
१९६६
ग्लास-टैंक
सोया हुआ शहर
जंगला
पाँचवें माले का फ़्लैट
फ़ौलाद का आकाश
चौग़ान
सेफ़्टी पिन
ज़ख़्म
एक ठहरा हुआ चाकू

भूमिका : 'नये बादल'

आज कहानी के सम्बन्ध में एक नयी दृष्टि पनप रही है। उससे कहानी के प्रभाव का स्वरूप भी बदल गया है और जिन स्रोतों से एक लेखक कहानी लिखने की प्रेरणा लेता है, उनका भी काफ़ी विस्तार हुआ है। हमारे चारों ओर जीवन का हर गगड़ (?) किन्हीं प्रभावों से चालित है। हम उन प्रभावों को पहचान सकें तो हर छोटे-से-छोटे खण्ड की अपनी एक कहानी है। जिस राह से दो पैर गुज़र जाते हैं, उस राह की धूल में उन पैरों से एक कहानी लिखी जाती है। हर जीवित इन्सान के चेहरे पर एक कहानी लिखी रहती है, जो उसके चेहरे की झुर्रियों में, उसकी पलकों के उठने-गिरने में और उसके माथे की सलवटों में पढ़ी जा सकती है। मेरे दरवाज़े पर जो चिक लगी है, वह उन हाथों की कहानी है जो धूप में बैठकर उसे रँगते रहे हैं। मेरे फ़र्श पर बिछी दरी शायद किसी प्रणय की कहानी है जो धागों को आपस में उलझाते हुए दो हृदयों को भी उलझा गया था। इस समय एक व्यक्ति दरी ख़रीदने के लिए धूप में सड़कों के चक्कर काट रहा है। इस व्यक्ति के जीवन में क्षोभ और ग्लानि भी आती है जब यह कुछ निजी लोगों के छोटे से दायरे में बैठकर हँसता है, या माथे पर हाथ रखे हुए पास आने वाले व्यक्ति पर झल्लाता है। इसकी चारपाई पर मैला खेस बिछा है, इसके लड़के की आँख दुखनी आयी है, इसके रसोईघर की दीवारें धुएँ में काली हो गयी हैं, पर इसकी पत्नी के चेहरे पर फिर भी एक मुसकराहट है। वह इसके हाथ में इसकी बहन का ख़त दे देती है कि उसके पति ने फिर उसे बुरी तरह पीटा है और वह उस घर को छोड़कर इन लोगों के पास आ रहना चाहती है—यह कहानी एक व्यक्ति की ही नहीं, उसके पूरे समय की भी है। कहानी का प्रत्यक्ष कैनवस छोटा और साधारण हो सकता है, पर जिस परोक्ष की ओर वह संकेत करती है, वह छोटा और साधारण नहीं है।

पिछले कुछ वर्षों में हम सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन की जिस

संक्रान्ति में से गुजरे हैं, उसकी विभिन्न परिस्थितियाँ हमारी पीढ़ी की कला-चेतना के विकास में सहायक भी हुई हैं, बाधक भी। सहायक इसलिए कि तेजी से बदलते जीवन ने इस पीढ़ी की संवेदना पर बार-बार चोट की है और उसे अपने समय के प्रति बहुत जागरूक बना दिया है। बाधक इसलिए कि हिन्दी को प्राप्त हुई नयी मान्यता के कारण रचना की मांग बढ़ जाने से लेखकों के काफ़ी बड़े वर्ग में व्यवसाय-बुद्धि जोर पकड़ गयी और रचना के आन्तरिक मूल्य की अपेक्षा उसकी अर्जन-शक्ति अधिक महत्वपूर्ण हो उठी। परिणामस्वरूप, जहां इस पीढ़ी के एक वर्ग ने बहुत ईमानदारी से साहित्यिक मूल्यों के विकास का प्रयत्न किया, वहां दूसरे वर्ग ने केवल लिखने के लिए लिखा और सामान्य पाठक के लिए यह विवेक कर पाना प्रायः असम्भव कर दिया कि इन वर्गों के बीच की रेखा कहां से आरम्भ होती है। जिन लेखकों ने वास्तव में कहानी के स्वरूप का परिमार्जन और परिष्कार किया है और उसे जीवन की भूमि के अधिक निकट ला दिया है, वे आज भी प्रयोग के नये धरातल खोज रहे हैं। आज के यथार्थ की विविधता और व्यापकता को कहानी में अंकित करने के बहुमुख प्रयोग उन द्वारा किये जा रहे हैं। सतह से देखा जाय तो भले ही आज का भारतीय जीवन शिथिल और गतिहीन प्रतीत हो, पर सतह से नीचे आज उसमें इतनी हलचल है जितनी पहले कभी नहीं रही। जब कि परिस्थितियाँ जीवन को हर तीन-चार साल में झकझोर जाती हों, जब कि एक साधारण व्यक्ति किसी निश्चित सूत्र को पकड़ कर अपना संतुलन बनाये रखने में असमर्थ हो, जब कि व्यक्ति की योग्यता और उसकी उपलब्धि का सम्बन्ध लगभग टूट गया हो, और जब कि हर एक की भविष्य की खोज अंधी गली में हाथ मारने की तरह हो, उस समय को छोड़ कर एक लेखक के अध्ययन और चित्रण के लिए और कौन-सा समय अधिक उपयुक्त हो सकता है? वास्तव में जीवन की संकुलता आज के लेखक के लिए एक चुनौती है। वह इस चुनौती को स्वीकार करे और जीवन की गहराई में नीचे तक जाने का साहस करे तो वह किसी भी समय की रचना से सूक्ष्मतर रचना कर सकता है क्योंकि बीते कल की उपलब्धियाँ आज के लेखक के लिए आदर्श नहीं, आरम्भ का संकेत हैं।

हमें यह स्वीकार करना होगा कि अब तक हमारी पीढ़ी ने यथार्थ के

अपेक्षाकृत ठहरे हुए अर्थात् वैयक्तिक और पारिवारिक रूप को ही अपनी रचनाओं में अधिक स्थान दिया है। निरन्तर कुलबुलाते और संघर्ष करते सामाजिक पार्श्व का एक व्यापक भाग अछूता रहा है जिसकी पहचान और पकड़ हमारे लेखकीय दायित्व का महत्त्वपूर्ण अंग है।

कुछ लोग हैं जो कहानी की उपलब्धियों का सम्बन्ध एक विशेष तरह के शिल्प या वस्तु के साथ जोड़कर उनका मूल्यांकन करना चाहते हैं। इसे अधिकारी दृष्टि नहीं कहा जा सकता। एक कहानी की उत्कृष्टता का यह आधार कैसे है कि कहानी इस वर्ग के पात्रों को लेकर लिखी गयी है या उस वर्ग से, और कि उसका सम्बन्ध गाँव के जीवन से है या कस्बे के या नगर के? इस दृष्टि का अनिवार्यतः यह अर्थ नहीं कि ऐसे लोग आज के जीवन की विकासशील वास्तविकता को स्वीकार करने में असमर्थ हैं? जीवन क्योंकि जड़ नहीं है इसलिए उसके किसी बँधे हुए रूप को ही एकमात्र वास्तविक रूप मान लेना क्या प्रगति में अविश्वास का द्योतक नहीं? इस जड़ परम्परावाद को कहाँ तक सार्थक माना जा सकता है? रचना का क्षेत्र निःसीम है, और रचना की वास्तविक सिद्धि उसके प्रभाव की व्यापकता में है। इसके लिए आवश्यक इतना ही है कि लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसकी रचना उसके और पाठक के बीच एक सम्बन्ध-सूत्र की स्थापना कर सके। इसके लिए अभिव्यक्ति में जिस स्वाभाविकता की आवश्यकता है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र की सहज अनुभूतियों से प्राप्त हो सकती है और वही वास्तव में रचना को सहज संवेद्य बनाने की क्षमता रखती है।

१९५७

भूमिका : 'एक और ज़िन्दगी'

हिन्दी में कहानी की चर्चा थोड़े दिनों से ही आरम्भ हुई है। दूसरी भाषाओं में भी कहानी की चर्चा बहुत विस्तार से नहीं हुई क्योंकि कविता के ह्रास की बात करते हुए भी प्रायः आलोचक साहित्य और कविता को पर्यायवाची-से मानकर चलते हैं। कहानी के विकास की दृष्टि से यह स्थिति सम्भवतः हितकर ही रही क्योंकि इससे कहानी के मूल्यों का विवेक आलोचकीय परिभाषाओं के सहारे विकसित न होकर रचनात्मक प्रयोगों के सहारे ही विकसित हुआ।

हर महीने संसार की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हज़ारों नयी कहानियाँ प्रकाशित होती हैं। क्या इनमें सब कहानियाँ 'नयी' होती हैं? किस अर्थ में एक 'नयी' कहानी 'पुरानी' कहानी से अलग होती है? क्या कहानी की नवीनता का सम्बन्ध उसके वस्तुक्षेत्र से है? और अच्छी कहानी क्या है? क्या अच्छी कहानी वह है जो अच्छे लोगों के बारे में लिखी जाती है?

कहानी की नवीनता का सम्बन्ध वस्तु और चरित्र की नवीनता के साथ जोड़ दिया जाय तो संसार में जितनी कहानियाँ लिखी जा रही हैं उनमें एक भी 'नयी' कहानी ढूँढ़ लेना कठिन होगा। ऐसा कोई भी विषय या क्षेत्र नहीं है जिसे लेकर पहले कहानियाँ नहीं लिखी जा चुकीं। इसलिए इस या उस क्षेत्र के जीवन को लेकर कहानियाँ लिखनेवाले लोग जब अपनी नयी दृष्टि, नयी चेतना और नयी भावभूमि की बात कहते हैं तो ऐसे लगता है जैसे वे अपने को किसी ऐसी चीज़ का विश्वास दिलाना चाहते हों जिस पर उनका भी मन विश्वास नहीं करता। निःसन्देह कहानी की सार्थकता इस बात में नहीं है कि वह किस नये अजायबघर से कौन-सा अजूबा लाकर हमारे सामने पेश करती है। नयी तरह के व्यक्ति या नयी तरह के वातावरण का चित्रण कर देने से एक नयी कहानी की सृष्टि नहीं हो जाती।

कुछ दिन पहले शेखर जोशी के कहानी संग्रह 'कोसी का घटवार' की भूमिका में यह शिकायत पढ़ी थी कि औद्योगिक जीवन के सम्बन्ध में लिखी

गयी कहानियों की आलोचकों में यह भावना नहीं थी जो ग्राम-जीवन को लेकर लिखी गयी कहानियों को थी है। औद्योगिक जीवन को लेकर लिखी गयी शेखर की कहानी 'मदद' काफ़ी अच्छी रचना थी है, परन्तु मेरी दृष्टि में उसकी सबसे अच्छी कहानी 'कोसी का घटवार' है, जो पार्वत्य प्रदेश के दो साधारण प्राणियों की भावात्मक हूक को लेकर लिखी गयी है। इसलिए शेखर का यह सोचना गलत है कि उन की कहानियों की विशेषता एक विशेष वर्ग या समुदाय के सम्बन्ध में लिखने के कारण है। औद्योगिक जीवन को लेकर संसार में कई एक अच्छी कहानियां लिखी गयी हैं, परन्तु इसी जीवन के सम्बन्ध में कितनी ही निर्जीव और यान्त्रिक-सी कहानियां भी लिखी गयी हैं। किस वर्ग या क्षेत्र को लेकर कहानी लिखी जाती है, निःसन्देह इससे कहानी के मूल्य पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

इसी तरह कहानी की अच्छाई या बुराई का सम्बन्ध इस बात से कदापि नहीं है कि जिन चरित्रों को कहानी में चित्रित किया गया है, वे भले हैं या बुरे—अपना सरपत काटकर किसी को दे आते हैं या नहीं। यदि चरित्र ही उदात्तता की कहानी कसौटी है, तो गुण्डों, जुआरियों, वेश्याओं और घूसखोर अफसरों को लेकर लिखी गयी संसार की सब कहानियां रद्दी हैं। चरित्र की श्रेष्ठता ही कहानी की श्रेष्ठता है, तो संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां आज से हज़ार साल पहले लिखी जा चुकी हैं।

कहानी की बात किसी भी कोण से उठायी जा सकती है। कहानी का शिल्प एक कोण है, भाषा दूसरा, यथार्थ की अभिव्यक्ति तीसरा और सांकेतिकता चौथा। कोण और भी हैं और हर कोण से विचार कई भूमियों पर किया जा सकता है। परन्तु किसी भी एक उपलब्धि से कहानी कहानी नहीं बनती—कहानी की आन्तरिक अन्विति का निर्माण इन सभी उपलब्धियों के सामंजस्य से होता है। यदि एक-एक कोण से देखते हुए ही कहानी की अच्छाई या बुराई का निर्णय दिया जाय, तो संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियां भी किसी-न-किसी दृष्टि से बेकार सिद्ध की जा सकती हैं और बहुत हीन स्तर की कृतियों में भी किसी-न-किसी कोण से श्रेष्ठता का निदर्शन किया जा सकता है। कहानी की इस या उस विशेषता की चर्चा करते हुए जिन प्र[illegible]कारों का हवाला दिया जाता है, उनकी रचनाओं में बस

वही एक-एक विशेषता नहीं है जिसके लिए उनका स्मरण किया जाता है। ओ हेनरियन शिल्प और चेखोवियन संवेदनाओं के दायरे में परेशान लोग अक्सर यह भूल जाते हैं कि ओ हेनरी और मोपासाँ कोरे शिल्पकार या साहित्यिक मदारी ही नहीं थे जिन्होंने जब-तब अपना पिटारा खोलकर कुछ चमत्कारपूर्ण करतब दिखा दिये। 'नेकलेस' तथा 'गिफ़्ट ऑफ़ द मागी' जैसी कहानियों का एक मानवीय पक्ष भी है, उनमें तात्कालिक जीवन की विडम्बनाओं का संकेत भी है। मोपासाँ की कहानियाँ अपने परिवेश में उस काल के फ़्रांस की कई सजीव झाँकियाँ प्रस्तुत करती हैं। दूसरी ओर चेखव की कहानियाँ शिल्प की दृष्टि से ढीली और मन पर मँडराने वाली छायाओं के प्रभाव में लिखी गयी भटकी हुई कहानियाँ नहीं हैं। चेखव ने अपनी कहानियों को एक निश्चित गठन देने के लिए जितनी मेहनत की है, उतनी शायद ही किसी अन्य कहानीकार ने की हो—यहाँ तक कि मोपासाँ और ओ हेनरी ने भी नहीं।

परन्तु आज की हिन्दी कहानी के मूल्यों की चर्चा करते हुए विदेशी कहानीकारों के लम्बे-चौड़े हवाले देना सिवाय हीनता की भावना के और कुछ नहीं है। हर देश और भाषा की कहानी अपनी परिस्थितियों और अपने लेखकों की सामर्थ्य के अनुसार विकसित होती है। हिन्दी कहानी अपने विकास की जिस मंज़िल पर है, वहाँ उसकी आन्तरिक उपलब्धियों और अनुपलब्धियों का विश्लेषण न करके जब ओ हेनरी की-सी गठन, मोपासाँ के-से व्यंग्य और चेखव की-सी अन्तर्दृष्टि का ज़िक्र किया जाता है, तो बात बहुत कच्ची और सतही प्रतीत होती है। हिन्दी कहानी भानुमती का पिटारा नहीं है जिसमें संसार के सब लेखकों की सब विशेषताएँ उपलब्ध होनी चाहिएँ। किसी भी भाषा की कहानी का मूल्यांकन करते समय हमारी दृष्टि दो बातों पर रहनी चाहिए। एक तो यह कि कहानी की आन्तरिक उपलब्धियों का विकास उसमें किन स्तरों पर हुआ है और दूसरे यह कि क्या उस भाषा की कहानी के विकास को एक निश्चित परम्परा के अन्तर्गत रखकर देखा जा सकता है।

जहाँ तक कहानी की आन्तरिक उपलब्धियों का सम्बन्ध है, उनमें सांकेतिकता को कहानी की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सकता

है। यह सांकेतिकता आज के या दूसरी की, या किसी एक भाषा की कहानी की ही उपलब्धि नहीं, कहानी-मात्र की एक अनिवार्य उपलब्धि है। पुरानी कहानी से नयी कहानी इस अर्थ में अलग होती है कि उसमें सांकेतिकता का विस्तार पहले से भिन्न स्तरों पर होता है। बात वही होती है और जीवन के उसी क्षेत्र से उठायी जाती है। मगर उसके सम्बन्ध में लेखक के अनुभव की भिन्नता, जीवन के यथार्थ की उसकी व्यापक पकड़ और भाषा तथा शिल्प के क्षेत्र में उसकी अपनी प्रयोगशीलता उसकी रचना को भिन्नता और एक और ही सार्थकता प्रदान कर देती है।

पिछले दशक में लिखी गयी हिन्दी कहानियों की विशिष्ट उपलब्धि सम्भवतः यही है कि उनमें सांकेतिकता के विभिन्न स्तरों का बहुमुखी विकास हुआ है। विश्व-कथा-साहित्य के सन्दर्भ में देखते हुए चरित्र या क्षेत्र की ऐसी कोई नवीनता नहीं है जिसकी ओर हिन्दी के नये कहानीकारों का ध्यान पहली बार गया हो। कहा जा चुका है कि किसी क्षेत्र विशेष के सम्बन्ध में लिखी जाने से ही कोई कहानी अच्छी या बुरी नहीं हो जाती है। 'कफ़न' इसलिए एक श्रेष्ठ कहानी नहीं है कि वह एक विशेष क्षेत्र से उठायी गयी है। 'आदर्शोन्मुखता' की कसौटी से तो वह 'प्रेमचन्द की परम्परा' की कहानी है ही नहीं। उस कहानी की विशेषता उसके अन्तर्निहित संकेत के कारण है। कहानी के चरित्रों में एक मॉर्बिडिटी है, परन्तु कहानी का संकेत मॉर्बिड नहीं है। यही बात 'शतरंज के खिलाड़ी' के सम्बन्ध में कही जा सकती है। इसलिए प्रेमचन्द की कहानियों की चर्चा करते हुए यह बेहतर होगा कि उनकी आन्तरिक उपलब्धियों को सामने रखा जाय, ग्राम-जीवन और आदर्शोन्मुखता की बातें कहकर भ्रांतियाँ खड़ी न की जायें।

मैंने पहले कहा है कि आज की हिन्दी कहानी के अन्तर्गत सांकेतिकता का विकास विभिन्न स्तरों पर हुआ है। कुछ लोगों ने कहानी के अन्तर्गत रूपकात्मक प्रयोगों को ही कहानी की सांकेतिकता मान लिया है और उसी आधार पर आज की हिन्दी कहानी की सांकेतिक उपलब्धियों का ब्यौरा प्रस्तुत कर दिया है। परन्तु रूपकात्मकता कहानी की सांकेतिकता का एक रूप है [illegible] कात्मकता बहुत दूर तक ले जायी जाय तो पहले के तुलनात्मक अ[illegible], उत्प्रेक्षा आदि—की तरह अखरने भी लगती है। इसके

लिए कई बार लेखक काल्पनिक बिम्बों का विधान करता है जो कहानी को यथार्थ भूमि से हटा देते हैं। कविता और कहानी में यह अन्तर तो है ही कि जहाँ काल्पनिक बिम्ब-विधान कविता में एक चमत्कार ला देता है, वहाँ कहानी को वह कमजोर कर देता है। कहानीकार बिम्बों के माध्यम से एक भाव या विचार को सफलतापूर्वक तभी व्यक्त कर सकता है जब वे बिम्ब यथार्थ की रूपाकृतियों से भिन्न न हों—उनके संघटन में जीवन के यथार्थ को पहचाना जा सके। जरा भी 'अनकन्विंसिंग' होते ही एक सुन्दर संकेत के रहते हुए भी कहानी असमर्थ हो जाती है। कहानी की वास्तविक सामर्थ्य इसी में है कि बड़ी-से-बड़ी बात कहने के लिए भी लेखक को असाधारण या असामान्य का आश्रय न लेना पड़े—साधारण जीवन के साधारण संघटन से ही वह विचार की अनुगूंज पैदा कर सके।

इसलिए कहानी की सहज सांकेतिकता रूपकात्मक सांकेतिकता से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। कहानी का वास्तविक संकेत कहानी की सहज गठन से स्वतः उभर आता है। आज की हिन्दी कहानियों में 'चीफ की दावत' और 'दोपहर का भोजन' जैसी कहानियाँ उदाहरण रूप में रखी जा सकती हैं। 'चीफ की दावत' का संकेत माँ के चरित्र के माध्यम से उभरता है और 'दोपहर का भोजन' में अभावग्रस्त घर की एक साधारण-सी दोपहर के वर्णन-मात्र से। इन दिनों की लिखी कितनी ही और ऐसी कहानियाँ मिल जायेंगी जिनमें कई-कई तरह के संकेत हैं—वे संकेत जो चरित्रों की भाव-भंगिमाओं और उनकी साधारण बातचीत से उभरते हैं, या केवल वातावरण के चित्रण से, या केवल कहानी के शिल्प या कहने के ढंग से ही। कहानी के अन्तर्निहित संकेत तक न जाकर जब केवल ऊपरी सतह पर ही उसका अध्ययन किया जाता है, तो कई बार एक बहुत अच्छी कहानी भी साधारण और सपाट-सी प्रतीत होती है। दूसरी ओर यदि कहानी में संकेत नहीं है, तो ऊपरी ढाँचे को कितना ही सँवारा और बेल-बूटों से सजा लिया जाय, वह सही अर्थ में कहानी नहीं बन पाती—वह एक नैरेटिव या विवरण-मात्र बनकर रह जाती है। कहानी कविता या चित्रकला के गुण से कहानी नहीं बनती, अपने गुण से कहानी बनती है—सजीव और सशक्त भाषा में यथार्थ के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके माध्यम

के एक अंग न रह गए।

[illegible] स्वतन्त्र होने के बाद [illegible] कहानी की [illegible] का विकास भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ है, परन्तु उसमें सामान्यता यह दृष्टि में है कि कहानी का अपने सन्दर्भों से कटने की प्रवृत्ति उसमें नहीं है। आज की कहानी, अपने मूल प्रवाह में, यथार्थ की सामान्य भूमि पर [illegible] ही लिखी जा रही है। इस तरह [illegible] की परम्परा से उसका सम्बन्ध टूटा नहीं है। [illegible] की दृष्टि से इस पीढ़ी में [illegible] का बहुत कुछ प्रयत्न उसका अपना है। इस कहानी की जड़ें आस-पास के यथार्थ की भूमि में है, इसलिए इसका एक अपना विशिष्ट रूप है। इस दृष्टि से वह ठेठ इस समाज और जीवन की कहानी है, हिन्दी की अपनी कहानी है। परम्परा के साथ सम्बन्ध की सार्थकता इस दृष्टि से है कि प्रेमचन्द के बाद की कहानी में कई ऐसे प्रयोग हुए हैं जिनमें व्यक्तियों और स्थानों के नाम छोड़कर और कुछ भी ऐसा नहीं था जिसका सीधा सम्बन्ध भारतीय जीवन से हो। ये कहानियाँ किसी भी देश की कहानियाँ हो सकती थीं, हमें अपने आस-पास की कहानियाँ तो वे कदापि नहीं लगतीं। उन कहानियों में कुछ अमूर्त संकेत हैं जो काल्पनिक विम्बों पर आश्रित हैं। इस तरह की कहानियों को एक विशेष तरह की कविता से अलग करके देखना कठिन है। फिर कुछ ऐसी कहानियाँ भी लिखी जा रही थीं जिनमें अपने आस-पास के यथार्थ को रूमानी लिहाफ़ में लपेटकर प्रस्तुत करने के प्रयत्न थे। सम्भवत: उस काल में एक ओर फ्रेंच कहानी और दूसरी ओर उर्दू कहानी का हिन्दी कहानी पर बहुत प्रभाव रहा। अमूर्त संकेतों और रूमानी यथार्थ की कहानियाँ हिन्दी में आज भी लिखी जाती हैं तथा कुछ अन्य भाषाओं के कथा-साहित्य की उपलब्धियों को छू लेने के और प्रयत्न भी दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु हिन्दी की नयी कहानी जिस रूप में विकसित हुई है, उस रूप में उसका भारतीय जीवन के ठोस धरातल से गहरा सम्बन्ध है और इसीलिए वह केवल 'साफ़िस्टिकेटिड' पाठक की कहानी न होकर साधारण पाठक की कहानी बनी रही है। यह बात कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि अपनी सांकेतिक उपलब्धियों के बावजूद आज की हिन्दी कहानी नयी कविता की तरह सामान्य पाठक से अपना सम्बन्ध तोड़ नहीं बैठी। यह तो असन्दिग्ध है ही कि जिस रचना

का प्रेरणा-स्रोत जीवन है, उसके प्रति जीवन की भी ममता रहती है। जो रचना जीवन की ओर भृकुटियाँ चढ़ाकर देखती है, जीवन भी उसका तिरस्कार कर देता है। कहानी की वर्तमान दिशा व्यक्ति की आन्तरिक कुण्ठाओं की दिशा न होकर एक सामाजिक दिशा है, यह बात उसकी आगे की सम्भावनाओं को व्यक्त करती है।

परन्तु साहित्य के इतिहास में कई बार ऐसा हुआ है कि जो लोग दूसरों की दी हुई रूढ़ियों से हटकर कुछ नया लेकर सामने आये, वे शीघ्र ही अपनी रची रूढ़ियों में ग्रस्त होकर रह गये। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में भी आज यह आशंका सामने है। पिछले छः-सात वर्षों में कई एक अच्छी कहानियाँ लिखी गयी हैं क्योंकि इस पीढ़ी के कहानीकारों में नये सन्दर्भों की खोज की व्याकुलता थी। वे सन्दर्भ कला के भी थे और जीवन के भी—यद्यपि सर्वत्र उस जीवन के नहीं जो कि अपनी समग्रता में हमारे चारों ओर जिया जा रहा है, जिसके बाहरी रूप में दिन-प्रतिदिन अधिक सकुलता आ रही है, जो बदल रहा है और जिसकी गति के भाग के रूप में हम अपने चारों ओर अनास्था और अविश्वास भी देखते हैं, परन्तु फिर भी जिसमें केवल अनास्था और अविश्वास ही नहीं है क्योंकि आन्तरिक रूप में आज भी वह अपने धरातल से हटा नहीं है। हिन्दी की नयी कहानी के अधिकांश प्रयोगों में जिस जीवन का चित्रण हुआ है, वह इस उफनती और शोर करती धारा से हटा हुआ जीवन है, उन अकेले किनारों का जीवन जहाँ अभी तक सामन्ती संस्कारों की छायाएँ मँडराती हैं। उस जीवन की स्थिरता, शान्ति और उज्ज्वलता की बात करते हुए उस दायरे से बाहर न निकलकर कुछ लोगों ने अपने प्रयोग-क्षेत्र को बहुत सीमित कर लिया है। निःसन्देह पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी के कई-एक नये कहानीकारों की निश्चित सामर्थ्य सामने आई है—उनसे कई-कई समर्थ रचनाओं की आशा की जा सकती है। परन्तु इधर कुछ ऐसा भी प्रतीत होने लगा है कि उन कहानीकारों ने अपने पैटर्न और सन्दर्भ निश्चित कर लिये हैं, और अपने अब तक के प्रयोगों को ही अपना आदर्श मानकर चलने लगे हैं।

परन्तु कहानीकार अपनी जगह पर रुका रह सकता है, जीवन अपनी जगह पर नहीं रुकता। जीवन का वस्तु-क्षेत्र वही है, मनुष्य की मूल प्रकृति

नहीं है, परन्तु जीवन के सन्दर्भ हर नये दिन के साथ बदल रहे हैं। बात नयी जगह जाकर नयी तरह के व्यक्ति की कहानी लिखने की नहीं, उसी जगह रहकर, उसी इन्सान के नये सन्दर्भों की है। जीवन के नये सन्दर्भों से देने भी है। जीवन के मूल्य बदल सकते हैं, पर सब जगह एक ही तरह से नहीं बदलते। हर देश और जाति के संस्कार बदलते मूल्यों को अपनी तरह से ग्रहण करते हैं जिससे परिवर्तन का भी हर जगह अपना एक अलग रंग हो जाता है। आज हमारे चारों ओर जीवन तेज़ी से बदल रहा है इसका अर्थ है कि हम बदल रहे हैं। यदि हम अपने इस बदलते 'सेल्फ' को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते, अपने इस 'सेल्फ' की ही कहानी नहीं कहते, तो इसका अर्थ है कि या तो हम किन्हीं असामयिक ग्रन्थियों में उलझे हैं, या जीवन की चुनौती को ठीक से स्वीकार करने से कतराते हैं।

बहुत-से लोग जब भारतीय जीवन की बात करते हैं तो प्रायः इस अर्थ में कि रूढ़ियों के दायरे में उलझा और अशिक्षा के अँधेरे आवर्त में घिरा हुआ जीवन ही भारतीय जीवन है। परोक्ष रूप से भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध भी ऐसे ही जीवन के साथ जोड़ दिया जाता है। ऐसी दृष्टि रखने का अर्थ यह है कि भारतीय जीवन और भारतीय संस्कृति सामन्ती रूढ़ियों का ही नाम है और आज जीवन उत्तरोत्तर भारतीयता और संस्कृति से शून्य होता जा रहा है!

हमारा जीवन आज एक बड़े संक्रान्तिकाल में से गुजर रहा है। जिन्दगी की नब्ज़ इतनी तेज है कि उसे हर जगह और हर पल महसूस किया जा सकता है। हम आज बड़ी-बड़ी वेधशालाओं में बैठे ऊँचे-ऊँचे सपने देख रहे हैं और स्कूलों, दफ्तरों और कारखानों में अपने अधिकारों के लिए लड़ते हुए शहीद भी हो रहे हैं। आज के जीवन में घुटन भी है और उस घुटन के साथ संघर्ष भी। जीवन की हर हताशा का अन्त कुएँ या बावली में जाकर नहीं होता—सामाजिक स्तर पर उससे लड़ने का प्रयत्न भी किया जाता है। जीवन का यह विराट् क्या भारतीय नहीं?

बात जीवन के इन्हीं सन्दर्भों को कहानी के अन्तर्गत व्यक्त करने की है। इकाई का जीवन एक इकाई का जीवन ही नहीं होता, एक समाज और समय के जीवन की प्रतिध्वनि भी उसमें सुनी जा सकती है। एक साधारण

घटना साधारण घटना ही नहीं होती, जीवन के व्यापक क्षितिज में काम करती शक्तियों की अभिव्यक्ति भी होती है। जो कुछ सामने आता है, उससे उतने का ही पता नहीं चलता, ऐसे बहुत कुछ का भी पता चलता है जिसे हम प्रत्यक्ष रूप में देख नहीं पाते। व्यक्तियों, घटनाओं और परिस्थितियों को उस व्यापक सन्दर्भ में देख और पहचानकर ही उनका सही चित्रण किया जा सकता है। कहानी आखिर जीवन के द्वन्द्वों और अन्तर्द्वन्द्वों को ही तो चित्रित करती है। कहानीकार की दृष्टि इन द्वन्द्वों और अन्तर्द्वन्द्वों को पहचानकर साधारण-से-साधारण घटना के माध्यम से उनका संकेत दे सकती है। वस्तु और संकेत के अन्तर को इसी से समझा जा सकता है। वस्तु की साधारणता कहानी की साधारणता नहीं होती, और इसी तरह वस्तु की मॉर्बिडिटी कहानी की मॉर्बिडिटी नहीं होती। कहानी मॉर्बिड तब होगी जब उसका संकेत मॉर्बिड हो—उसमें कहीं गयी लेखक की बात एक मॉर्बिड दिशा की ओर संकेत करती हो। ऐसी भी कहानियाँ लिखी जाती हैं जिनमें वस्तु, चरित्र, भाषा और शिल्प, सभी कुछ सुन्दर होता है—केवल उनके संकेत में एक मॉर्बिडिटी रहती है। वे व्यक्ति की कुण्ठा को 'कॉस्मेटिक स्टोर्स' के सभी उपादानों से सजाकर या उन्मुक्त प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठभूमि के आगे रखकर इस तरह प्रस्तुत करती हैं कि उसमें वह कुण्ठा ही सुन्दर प्रतीत होती है। इसी तरह भाषा और बिम्बों का रेशमी लिबास पहनाकर कुण्ठाओं में एक आकर्षण और सार्थकता भरने का प्रयत्न किया जाता है। कहानी यदि घुटन और कुण्ठा में सार्थकता देखती है, तो वह मॉर्बिड है। जीवन के प्रति विरक्ति उत्पन्न करती है तो वह मॉर्बिड है। परन्तु यदि मॉर्बिडिटी कहानी की वस्तु में ही है और उसके संकेत से उस मॉर्बिडिटी को लेकर असन्तोष और विद्रोह की भावना जागती है, उस मॉर्बिडिटी को हटाने के लिए कुछ करने की इच्छा होती है, तो कहानी मॉर्बिड नहीं है।

नये सन्दर्भों को खोजने का यह अर्थ नहीं कि अपने वस्तु-क्षेत्र से बाहर जाया जाय। जीवन के नये सन्दर्भ अपने वातावरण से दूर कहीं नहीं मिलेंगे, उस वातावरण में ही ढूँढ़े जा सकेंगे। अभावग्रस्त जीवन की विडम्बना केवल खाली पेट और ठिठुरते शरीर के माध्यम से ही व्यक्त नहीं होती।

6003

प्यार केवल सम्पन्नता और विपन्नता के अन्तर से ही नहीं झलकता। ममता केवल बलिदान करके ही सार्थक नहीं होती। अनाचार का सम्बन्ध [illegible] और बलात्कार के साथ ही नहीं है, और विश्वास केवल उठी हुई बाँहों के सहारे ही व्यक्त नहीं होता। हर रोज के जीवन में यह सब कुछ अनेकानेक सन्दर्भों में और कई-कई रंगों में सामने आता है। आज के जीवन ने इन रंगों में और भी विविधता ला दी है। बात इन विविध रंगों को पकड़ने और कहानी की सांकेतिक अन्विति में अभिव्यक्त करने की है। जीवन के नये सन्दर्भ कलात्मक अभिव्यक्ति के नये सन्दर्भ स्वतः प्रस्तुत कर देते हैं। कहानी के शिल्प का विकास लेखक की प्रयोग-चेतना पर उतना निर्भर नहीं करता, जितना उसके मैटर की आन्तरिक अपेक्षा पर। पाठक की रुचि के उत्तरोत्तर परिष्कार से भी एक नयी माँग उत्पन्न होती है। लेखक यदि स्वयं अपनी रचना का पाठक बना रहता है, तो उसका असन्तोष ही उसे अभिव्यक्ति के नये आयामों को छूने की ओर प्रवृत्त करता है। शिल्प के बदलने में लेखक के असन्तोष और मैटर की आन्तरिक अपेक्षा दोनों का ही योग रहेगा। यदि शिल्प का चौखटा तैयार करके उसमें मैटर को फ़िट करने का प्रयत्न किया जाय, तो उससे कुछ भी हासिल नहीं होगा क्योंकि रचना के नये समर्थ शिल्प का विकास केवल प्रयोग-चेतना से नहीं, नये मैटर के सामने पुराने शिल्प की असमर्थता के कारण होता है।

१९५९

ज़ख़्म

हाथ पर ख़ून का एक लोंदा ...सूखे और चिपके हुए गुलाब की तरह। फुटपाथ पर औंधे पीपे से गिरा गाढ़ा कोलतार...सर्दी से ठिठुरा और सहमा हुआ। एक-दूसरे से चिपके पुराने काग़ज़...भीगकर सड़क पर बिखरे हुए। खोदी हुई नाली का मलबा...झड़कर नाली में गिरता हुआ। बिजली के तारों से ढका आकाश...रात के रंग में रँगता हुआ। चिकने माथे पर गाढ़ी काली भौंहें...उँगली और अँगूठे से सहलायी जा रहीं।

आवाज़ों का समन्दर...जिसमें कभी-कभी तूफ़ान-सा उठ आता। एक मिला-जुला शोर फुटपाथ की रेलिंग से, स्टालों की रोशनियों से, इससे, उससे और जिस-किसी से आ टकराता। कुछ देर की कसमसाहट...और फिर बैठते शोर का हल्का फेन जो कि मुँह के स्वाद में घुल-मिल जाता...या सिगरेट के कश के साथ बाहर उड़ा दिया जाता।

भोंचते होंठों को सोचने से रोकती सिगरेट-थामे उँगलियाँ। क्रासिंग पर एक छोटे क़दों का रेला...ऊँचे क़दों को धकेलता हुआ। एक ऊँचे क़दों का रेला...छोटे क़दों को रगेदता हुआ। उस तरफ़ छोटे और ऊँचे क़दों का एक मिला-जुला कहकहा। बालकनी पर झटके जाते बाल। एक दरम्याना क़द की सीटी। सड़क पर पहियों से उड़ते छींटे।

एक-एक साँस भीचने और छोड़ने के साथ उसकी नाक के बाल हिल जाते थे। वह हर बार जैसे अन्दर जाती हवा को सूँघता था। उसका आना-जाना महसूस करता था।

उसके कॉलर का बटन टूटा हुआ था। शेव की दाढ़ी का हरा रंग गर्दन की गोराई से अलग नज़र आता था। जहाँ से हड्डी शुरू होती थी, वहाँ एक गड्ढा पड़ता था जो थूक निगलने या जबड़े के कसने से गहरा हो जाता था। कभी, जब उसकी ख़ामोशी ज़्यादा गाढ़ी होती, वह गड्ढा लगातार काँपता। कॉलर के नीचे के दो बटन हमेशा की तरह खुले थे। अन्दर बनियान नहीं थी, इसलिए घने बालों से ढकी छाती दूर

तक नज़र आती थी। इतनी साफ़ कि जैसे किसी चित्र के नक़्शा हो। पानी के रंग लाल स्याह थे, कुछ सुनहरे। पर जो बत्तियों को लाँघकर बाहर सड़क आ गये थे, वे ज़्यादातर सफ़ेद थे।

सड़क के उस तरफ़ पत्थर के खम्भों से रोशनी की तरह लटकते फ़ानूस से एक-सी रोशनी नीचे दे रहे थे। रोशनी उनके अन्दर से कहीं में उतरती जान पड़ती थी जो कभी ठहरती, कभी सरकी हो जाती थी। रोशनी के साथ-साथ सामने की दीवारों, आदमियों और पार्क की गर्दी गाड़ियों के रंग हल्के-गाढ़े होते लगते थे। बिजली के तारों से ऊपर, आसमान में सटकर, अँधेरा धुन्ध की तरह इधर-से-उधर मँडरा रहा था। कुछ अँधेरा पास के ताले में बन्द की तरह दुबका था। ठण्डी हवा पतलून के पाँयचों से ऊपर को सरसरा रही थी।

"नो?" मैंने दूसरी या तीसरी बार उसकी आँखों में देखते हुए कहा। लगा जैसे वह मेरी नहीं, किसी घूमती हुई गरारी की आवाज़ हो जो हर दो मिनट के बाद 'नो' के झटके पर आकर लौट जाती हो।

उसका सिर ज़रा-सा हिला। घने घुँघराले बालों में कुछ सफ़ेद लकीरें रोशन होकर बुझ गयीं। चकोतरे की फाँकों जैसे भरे हुए लाल होंठ पल-भर के लिए एक-दूसरे से अलग हुए और फिर आपस में मिल गये। माथे पर उसके चिलगोज़े-जितनी एक शिकन पड़ गयी थी।

"तुम और भी कुछ कहना चाहते थे न!" मैंने गरारी का फ़ीता तोड़ा। उसने रेलिंग पर रखी बाँह पर पहले से ज़्यादा भार डाल लिया। कहा कुछ नहीं। सिर्फ़ सिर हिलाकर मना कर दिया।

कई-कई दोमुँही रोशनियाँ आगे-पीछे दौड़ती पास से निकल रही थीं। रोशनियों से बचने के लिए बहुत-से पाँव और साइकिलों के पहिये तिरछे होने लगते थे। रेलिंग में कई-कई ठण्डे सूरज एक-साथ चमक जाते थे।

मैं समझने की कोशिश कर रहा था। अभी-अभी कोई आध घण्टा पहले घर से निकलकर बाल कटाने जा रहा था, तो पूसा रोड के फ़ुट-पाथ पर किसी ने दौड़ते हुए पीछे से आकर रोका था। कहा था कि

उस तरफ़ टू-सीटर में कोई साहब बुला रहे हैं। दौड़कर आने वाला टू-सीटर का ड्राइवर था। मैंने घूमकर देखा, तो टू-सीटर में पीछे से घुँघराले बालों के गुच्छे ही दिखायी दिये। ड्राइवर ने वहीं से सड़क को पार कर लिया, पर मैंने कुछ दूर तक फुटपाथ पर वापस जाने के बाद पार किया। पार करते हुए रोज़ से ज़्यादा ख़तरे का एहसास हुआ क्योंकि तब तक मैं उसे देख नहीं पाया था। टू-सीटर के पास पहुँचने तक कई तरह की आशंकाएँ मन को घेरे रहीं।

मेरे पास पहुँच जाने पर भी वह पीछे टेक लगाये बैठा रहा। हुड के अन्दर देखने तक मुझे पता नहीं चला कि कौन है . . घुँघराले बालों से हल्का-सा अन्दाज़ा हालांकि मुझे हो रहा था। अब पता चल गया कि वही है, तो ख़तरे का एहसास मन से जाता रहा।

"मुझे लग रहा था तुम्हीं हो," मैंने कहा। पर वह मुसकराया नहीं। सिर्फ़ कोने की तरफ़ को थोड़ा सरक गया।

"कहीं जा रहे थे तुम ?" मैं पास बैठ गया, तो उसने पूछा।

"बाल कटाने," मैंने कहा। "इस वक़्त सैलून में ज़्यादा भीड़ नहीं होती।" वह सुनकर ख़ामोश रहा, तो मैंने कहा, "बाल मैं फिर किसी दिन कटा सकता हूँ। इस वक़्त तुम जहाँ कहो, वहाँ चलते हैं।"

"मैं नहीं, तुम जहाँ कहो . . . ," उसने जिस तरह कहा, उससे मुझे कुछ अजीब-सा लगा . . . हालांकि बात वह अक्सर इसी तरह करता था। उसका पिये होना भी उस वक़्त मुझे ख़ास तौर से महसूस हुआ, हालांकि ऐसा बहुत कम होता था कि वह पिये हुए न हो। उसके होंठ खुले थे और एक बाँह टू-सीटर की खिड़की पर रखकर वह इस तरह कोने की तरफ़ फैल गया था कि डर लगता था झटके से नीचे न जा गिरे।

"घर चलें ?" मैंने कहा, तो वह पल-भर सीधी नज़र से मुझे देखता रहा। फिर जवाब देने की जगह होंठ गोल करके ज़बान ऊपर को उठाये हुए हँस दिया।

"कुछ देर बाहर ही कहीं बैठना चाहो, तो कनाट प्लेस चले चलते हैं।"

जवाब उसने फिर भी नहीं दिया। सिर्फ़ ड्राइवर को इशारा किया

कि वह टू-सीटर की सीट की तरफ़ झोंके से ।

सड़क के गड्ढों पर से हिचकोले खाता टू-सीटर नाले से आगे बढ़ आया, तो एक बार वह बहुत जोर से हिलने-डुलने लगा । मैंने अपनी बाँह उसके कन्धे पर रखते हुए कहा, "आज तुमने फिर बहुत पी है।"

"नहीं," उसने मेरी बाँह हटा दी । "पी है, पर बहुत नहीं । सिर्फ़ मैं बहुत मस्त हूँ ।"

मैं थोड़ा सतर्क हो गया । वह जब भी पीकर मस्त हो जाता था, तभी कहता था, "मैं बहुत मस्त हूँ ।"

मैंने हँसने की कोशिश की...बहुत कुछ मन की भीतरी आशंका और उससे पैदा हुई अस्थिरता की वजह से । उसका हाथ भी उसी वजह से अपने हाथों में ले लिया और कहा, "मुझे पता है तुम जब बहुत मस्त होते हो, तो उसका क्या मतलब होता है ।"

उसका सिर टू-सीटर के कोने से सटा हुआ था । उसने वहीं से उसे हिलाया और कहा, "तुम समझते हो कि तुम्हें पता है...तुम हर चीज़ के बारे में यही समझते हो कि तुम्हें पता है ।"

मुझे अब भी लग रहा था कि वह झटके से बाहर न जा गिरे, पर अब उसके कन्धे पर मैंने बाँह नहीं रखी । अपने हाथों में लिये हुए उसके हाथ को थोड़ा और कस लिया...।

आती-जाती बसों, कारों और साइकिलों के बीच से रास्ता बनाता टू-सीटर लगभग सीधा चल रहा था । खड़खड़ाहट के साथ गुर्र-गुर्र की आवाज़ ऊँची उठकर धीमी पड़ने लगती थी । बीच में किसी खुमचे या घोड़ा-गाड़ी के सामने पड़ जाने से ब्रेक लगता और हम सीट से ऊपर को उछल जाते । आर्यसमाज रोड के बड़े दायरे पर एक बस के झपाटे से बचकर टू-सीटर फुदकता हुआ गोल घूमने लगा । घूमकर लिंक रोड पर आने तक मैं बायीं तरफ़ के फ़िल्म-पोस्टर पढ़ता रहा...जिससे मन इर्द-गिर्द के बड़े ट्रैफ़िक की दहशत से बचा रहे ।

पर वह उस बीच एकटक ट्रैफ़िक की ही तरफ़ देखता रहा । लिंक रोड पर आ जाने पर उसने अपना हाथ मेरे हाथों से छुड़ा लिया ।

"मैं आज तुमसे एक बात करने आया था," उसने कहा । आँखें

उसकी अब सड़क को बीच से काटती पटरी को देख रहीं थीं...और उससे आगे पैट्रोल पम्प के अहाते को।

मैं क्षण-भर उसे और अपने को जैसे पैट्रोल पम्प के अहाते में खड़ा होकर देखता रहा...टू-मीटर में साथ-साथ बैठे और हिचकोले खाते हुए। लगा जैसे हम लोगों के उस वक्त उस तरह वहाँ से गुज़र कर जाने में कुछ अलग-सी बात हो जिसे बाहर खड़े होकर पैट्रोल पम्प की दूरी से ही देखा और समझा जा सकता हो।

"तुम बात अभी करना चाहोगे या पहले कहीं चलकर बैठ जायें ?" मैंने पूछा। दूसरी जगह का ज़िक्र इसलिए किया कि अच्छा है बात कुछ देर और टली रहे।

"तुम जब जहाँ चाहो," उसने दोनों हाथ अपने घुटनों पर रख लिये और कोने से थोड़ा आगे को झुक आया। "बात सिर्फ इतनी है कि आज से मैं और तुम.. मैं और तुम आज से. .दोस्त नहीं हैं।"

इतनी देर से मन में जो तनाव महसूस हो रहा था वह सहसा कम हो गया. .शायद इसलिए कि वह बात मुझे सुनने में ज्यादा गम्भीर नहीं जान पड़ी। कुछ वैसी ही बात थी जैसी बचपन में कई बार कई दूसरों के मुँह से सुनी थी। यह भी लगा कि शायद वह नशे की बहक में ही ऐसा कह रहा है। मैं पहले से ज़्यादा खुलकर बैठ गया। अपना हाथ मैंने टू-मीटर की खिड़की पर फैल जाने दिया।

पंचकुइयाँ रोड पर टू-मीटर को कहीं भी रुकना नहीं पड़ा। सड़क उसे साफ मिलती रही। बत्तियाँ भी दोनों जगह हरी मिलीं। मैंने अपना ध्यान दूकानों के बाहर रखे फर्नीचर की आड़ी-तिरछी बाँहों और लैम्प शेड्स के गोल और लम्बूतरे चेहरों में उलझाये रखा। ऊपर से ज़ाहिर नहीं होने दिया कि मैंने उसकी बात को ज़्यादा गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया। एकाध बार बल्कि इस तरह उसकी तरफ़ देख लिया जैसे मुझे आगे की बात सुनने की उत्सुकता हो...और उत्सुकता ही नहीं, साथ गिला भी हो कि उसने ऐसी बात क्यों कही।

पंचकुइयाँ रोड पार करके अन्दर के दायरे में आते ही उसने ड्राइवर से रुक जाने को कहा। फिर मुझसे बोला, "आओ, यहीं उतर जायें।"

मैं जेब से पैसे निकालने लगा, तो उसने मेरा हाथ रोक दिया और अपना बटुआ निकाल लिया।

कुछ देर हम लोग खामोश चलते रहे। मैं अपने पैरों की ओर सामने की पटरी को देखता रहा। लगा कि पैरों के नाखून बहुत बढ़ गये हैं... कि उतनी ठण्ड में मुझे सिर्फ़ चप्पल पहनकर घर से नहीं निकलना चाहिए था। कुछ गीली मिट्टी चप्पल में घुसकर पैरों से चिपक गयी थी। पैर ठण्ड के बावजूद पसीने से तर थे... हमेशा की तरह। मैंने सोचा कि उन दिनों मोज़ा तो कम-से-कम मुझे पहनना ही चाहिए।

चलते-चलते एक कार्निस के पास आकर वह रेलिंग के सहारे रुक गया। तब मैंने पहली बार देखा कि उसकी पतलून और बुशशर्ट पर लहू के दाग़ हैं। बायीं हथेली पर छिगुनी के नीचे टेढ़े ढंग का ज़ख्म मुझे कुछ बाद में दिखायी दिया।

"तुम्हारी बुशशर्ट पर ये दाग़ कैसे हैं?" मैंने पूछा।

उसने भी एक नज़र उन दाग़ों पर डाली—ऐसे जैसे उन्हें पहली बार देख रहा हो। "कैसे हैं?" उसने ऐसे कहा जैसे मैंने उस पर कोई इल्ज़ाम लगाया हो। "हाथ कट गया था, उसी के दाग़ होंगे।"

"हाथ कैसे कट गया?"

उसका चेहरा कस गया। "कैसे कट गया?" वह बोला। "कैसे भी कटा हो, तुम्हें इससे क्या है?"

कुछ देर खामोश रहकर हम इधर-उधर देखते रहे...बीच-बीच में एक-दूसरे की तरफ़ भी। नियॉनसाइन्स की जलती-बुझती रोशनियाँ गीली सड़क में दूर अन्दर तक चमक जाती थीं। पहियों की कई-कई फिरकियाँ उनके ऊपर से फिसलती हुई निकल जाती थीं। जब वह मेरी तरफ़ न देख रहा होता, तो सड़क पर फिसलती रोशनियाँ उसकी आँखों में भी बनती-टूटती नज़र आतीं।

मैं मन-ही-मन कल के ताने-बाने को आज से जोड़ रहा था। कल वह सिन्धिया हाउस के चौराहे पर मेरे साथ खड़ा हँस रहा था। दस आदमियों के घेरे में से खुद ही मुझे उठाकर ले आया था। फ़ुटपाथ पर चलते हुए

ज़िद के साथ उसने मेरा सिगरेट सुलगाया था। फिर मुझे अपने कमरे में चलने और चलकर बियर पीने को कहा था। मेरे कहने पर कि उस वक्त मैं नहीं चल सकूँगा, उसने बुरा भी नहीं माना था। मुझे छोड़ने बस-स्टॉप तक आया था। बस में मेरे साथ खड़ा रहा था। बस की भीड़ में मेरे फुटबोर्ड पर पाँव जमा लेने पर उसने दूर से हाथ हिलाया था। मैं जवाब में हाथ नहीं हिला सका क्योंकि मेरे दोनों हाथ भीड़ में फँसे हुए थे। बस चल दी, तब वह स्टॉप से थोड़ा हटकर अँधेरे में खड़ा मेरी तरफ देखता रहा था। मुझसे आँख मिलने पर हल्के से मुसकरा दिया था।

जब हम घण्टा भर साथ थे, पर उस दौरान हमारे बीच कोई ख़ास बात नहीं हुई थी। उसने कहा था कि अब जल्दी ही कोई अच्छी-सी लड़की देखकर वह शादी कर लेना चाहता है... अकेलेपन की ज़िन्दगी उससे और बर्दाश्त नहीं होगी। पर यह बात उसने पिछले हफ्ते भी कही थी, महीना भर पहले भी कही थी, और चार साल पहले भी। मैंने हमेशा की तरह सरसरी तौर पर हामी भर दी थी। हमेशा की तरह यह भी कहा था कि पहले ठीक से सोच ले कि कहीं सचमुच वह उस ज़िन्दगी को निभा सकेगा। कहीं ऐसा न हो कि बाद में आज से ज़्यादा छटपटाहट महसूस करे। जिन्दिया हाउस के चौराहे पर इसी बात पर वह हँसा था। "मुझे मालूम था," उसने कहा था, "कि तुम मुझसे यही कहोगे। यह बात तुम आज पहली बार नहीं कह रहे।" मुझे इससे थोड़ी शरम आयी थी, क्योंकि सचमुच मैं उससे यह बात कई बार कह चुका था... शिमला में डेविकोज़ की पिछली खिड़की के पास बैठकर बियर पीते हुए... जमशेदपुर में उसके होटल के कमरे में बिस्तर में लेटे हुए... इलाहाबाद में गवर्नर के लॉन में चहलकदमी करते हुए... और बम्बई में कफ परेड पर समन्दर में जाती गन्दी नाली की उस सँकरी डण्डी पर चलते हुए, जहाँ नाजायज शराब पीना और नाजायज प्रेम करना दोनों ही नाजायज नहीं है। इनके अलावा और भी कई जगह यह बात मैंने उससे कही होगी क्योंकि नौ साल की दोस्ती में ज़्यादातर हमारी बात स्त्री और पुरुष के सम्बन्धों को लेकर ही होती रही थी।

"सब बात तय तो हमारे बीच किसी कोई बात नहीं थी," मैंने कहा।
"उसके बाद इस बीच कैसा वक्त या गुज़ारा तुमने...?"

वह हँसा। "क्या ही मज़ेदार था उसके बाद?...उसके बाद मैं अपने कमरे में चला गया और आकर सो गया।" लेकिन पर उसी मोटी हथेली के बीच में एक बार शिकन नहीं। वह जिस तरह लेकिन से मुस्करा रहा था, उससे पता चल रहा था कि अब आगे कहने का उसका इरादा नहीं है।

"आज दिन भर कहाँ रहे?"

"यहीं अपने कमरे में। इसके बाद अगर पूछोगे कि क्या करता रहा...तो जवाब है कि टहलता रहा, किताब पढ़ता रहा, शराब पीता रहा।"

उसका ज़ख्मी हाथ अब मेरे सामने था। निऑन-लाइट्स से बदलते रंगों में लहू का रंग हरा-नीला होकर गहरा-भूरा हो जाता था।

किसी-किसी क्षण मुझे लगता कि शायद वह मज़ाक कर रहा है। कि अभी वह ठहाका लगाकर हँसेगा और बात वहीं समाप्त हो जाएगी। मगर उसकी आँखों में मज़ाक की कोई छाया नहीं थी। जिस हाथ पर ज़ख्म नहीं था, उससे वह लगातार अपनी भौंहों को सहला रहा था। इस तरह भौंहों को वह तभी सहलाता था जब 'बहुत खुश' होता था।

इस तरह 'बहुत खुश' उसे मैंने कितनी ही बार देखा था। एक बार शिमला में जब कम्बरमियर पोस्ट ऑफ़िस के बाहर उसने अपने एक साथी को पीट दिया था। वह आदमी इसके दफ़्तर का स्टेनो था... और इसका पीने और उधार लेने का साथी था। उस घटना के बाद दोनों की डिपार्टमेण्टल इन्क्वायरी हुई और उन्हें शिमला से ट्रान्सफ़र कर दिया गया। फिर इलाहाबाद के एक बार में, जब किसी ने पास आकर अपने गिलास की शराब इसके मुँह पर उछाल दी थी। यह उसके बाद रात भर अपनी चारपाई के गिर्द चक्कर काटता रहा और कहता रहा कि उस आदमी की जान लिये बगैर अब यह नहीं सो सकेगा। बम्बई के दिनों में तो यह अक्सर ही 'बहुत खुश' रहता था। मैं उन दिनों चर्चगेट के एक गेस्ट-हाउस में रहता था। यह दिन में या रात में किसी

भी वक़्त मेरे पास चला आता . . . दो में से एक बार अपनी भौंहों को सहलाता हुआ। कभी झगड़ा उस घर के लोगों से हुआ होता जिनके यहाँ वह पेइंग गेस्ट था . . . कभी कोलाबा के बूट-लेगर्ज़ से जो नौ बजने के साथ ही अपने दरवाज़े बन्द कर लेना चाहते थे। एकाध बार जब इसे लगा कि उस तरह पीकर आने पर मैं भी इससे कतराता हूँ, तो वह मेरे पास न आकर रात भर कफ़ परेड के खुले पेवमेण्ट पर सोया रहा।

वह जिस ढंग से जीता था, उससे कई बार ख़तरा महसूस करते हुए भी मुझे उसके व्यक्तित्व में एक आकर्षण लगता था। वह बिना लाग-लिहाज़ के किसी के भी मुँह पर सच बात कह सकता था . . . दस आदमियों के बीच अलिफ़-नंगा होकर नहा सकता था . . . अपनी जेब का आख़िरी पैसा तक किसी को भी दे सकता था। पर दूसरी तरफ़ यह भी था कि किसी लड़की या स्त्री के साथ दस दिन के प्रेम में जान देने और लेने की स्थिति तक पहुँचकर चार दिन बाद वह उससे बिलकुल उदासीन हो सकता था। अक्सर कहा करता था कि किसी ऐसी स्त्री के साथ ही उसकी पट सकती है जो एक माँ की तरह उसकी देखभाल कर सके। यह शायद इसलिए कि बचपन में माँ का प्यार उसके बड़े भाई को उससे ज़्यादा मिला था। इसी वजह से शायद ज़्यादातर उसका प्रेम विवाहित स्त्रियों से ही होता था . . पर उसमें उसे यह बात सालती थी कि वह स्त्री उसके सामने अपने पति से बात भी क्यों करती है . . . बच्चों के पास न होने पर भी उनका ज़िक्र ज़बान पर क्यों लाती है! "मुझे यह बर्दाश्त नहीं," वह कहता, "कि मेरी मौजूदगी में वह मेरे सिवा किसी और के बारे में सोचे, या मुझसे उसका ज़िक्र करे।"

नौ साल में मैं उसे उतना जान गया था जितना कि कोई भी किसी को जान सकता है। उसकी ज़िन्दगी जितनी दुर्घटनापूर्ण होती गयी थी, उतना ही मेरा उससे लगाव बढ़ता गया था। यह लगाव उसकी दुर्घटनाओं के कारण शायद उतना नहीं था, जितना अपनी दुर्घटनाओं को बचाकर चलने के कारण। मेरी जानकारी में वह अकेला आदमी था जो दायें-बायें का ख़याल न करके सड़क के बीचोंबीच चलने का साहस रखता

था। वह किसी हद तक दिन की [illegible] करता था ... उस
[illegible] हो गया था। पर ऐसे जब कभी याद आता, तो वह
कोशिश न करता कि अपने इस [illegible] करे। अब वह
[illegible] और अपने [illegible] करता
था [illegible] कि जिन्दगी के बारे में उसका अब तक
का [illegible] था। कि अब वह एक निश्चित [illegible]
[illegible] करने की कोशिश न [illegible] ... कि अब अपने को जिन्दगी के औ
[illegible] नहीं करेगा ... कि अब [illegible] शादी [illegible] ढंग से औ
[illegible] करेगा। जब तक नौकरी रहती और पीने को काफी समय मि
जाती, तब तक वह कहता, "नहीं, मैं तुम लोगों की तरह नहीं जी सकता।
मैं अपने वक्त का हिस्सा नहीं, उसका निगहबान हूँ। मैं जीता नहीं, देख
हूँ ... क्योंकि जीना अपने में बहुत घटिया चीज है। जीने के नाम पर
पेड़-पौधे भी जीते हैं ... पशु-पक्षी भी जीते हैं।" पर जब कभी लम्बी बेका
के दौर से गुजरना पड़ता, और कई-कई दिन शराब छूने को न मिलत
तो वह भूल-भुलैया में खोये आदमी की तरह कहता, "मुझे समझ आ र
है कि मैं बिलकुल कट गया हूँ ... हर चीज से बहुत दूर हो गया हूँ।" अ
चन्द महीने पहले नयी नौकरी मिलने पर उसने कहा था, "मुझे खुशी
मैं अपनी दुनिया में लौट आया हूँ। इस बार की बेकारी में तो मुझे ल
रहा था कि मैं तुम से भी कट गया हूँ ... अपने में बिलकुल अकेला पड़ ग
हूँ। मुझे यह भी एहसास हो रहा था कि तुम सब लोगों ने मुझे बीता हु
मान लिया है ... बीता हुआ और गुमशुदा।" उसके बाद मैंने उ
लगातार कोशिश करते देखा था ... अपने को वक्त का निगहबान बनने
रोकने की। अब काम के वक्त के बाद वह अपने को कमरे में बन्द न
रखता था ... इधर-उधर लोगों से मिलने चला जाता था। जिन लोगों
नाम से ही कभी भड़क उठता था, उनके साथ बैठकर चाय-कॉफ़ी पी ले
था। उनके मजाक़ में शामिल होकर साथ मजाक़ करने की कोशिश
करता था। इसी बीच दो-एक मैट्रिमोनियल विज्ञापनों के उत्तर में उस
पत्र भी लिखे थे ... दो-एक लड़कियों को जाकर देख भी आया था। ए
लड़की देखने में साधारण थी ... दूसरी साधारण भी नहीं थी। वैसे दो

लड़कियाँ नौकरी में थीं। "मैं किसी ऐसी ही लड़की से शादी करना चाहता हूँ," उसने कहा था, "जो अपना भार खुद सँभाल सकती हो। ताकि आगे कभी बेकारी आये, तो मुझे दोहरी तकलीफ़ में से न गुजरना पड़े।"

पर दोनों में से किसी भी जगह वह बात तय नहीं कर पाया... बात सिरे पर पहुँचने से पहले ही किसी-न-किसी बहाने उसने उन्हें टाल दिया। अभी दस दिन हुए एक चायघर में बैठे हुए अचानक ही वह लोगों के बीच से उठ खड़ा हुआ था। "मैं जाऊँगा," उसने कहा था। "मेरी तबीयत ठीक नहीं है। लग रहा है मेरा दिल 'सिंक' कर रहा है।" चेहरा उसका सचमुच ज़र्द हो रहा था। सर्दी के बावजूद माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं।

मैं तब उसके साथ उठकर बाहर चला आया था। बाहर फुटपाथ पर आकर वह खोयी हुई नज़र से इधर-उधर देखता रहा था। "किसी डॉक्टर के यहाँ चलें?" मैंने उससे पूछा, तो वह जैसे चौंक गया। बोला, "नहीं-नहीं, डॉक्टर को दिखाने की ज़रूरत नहीं। मैं अपने कमरे में जाकर लेट रहूँगा, तो सुबह तक ठीक हो जाऊँगा।" दूसरे-तीसरे दिन मैं उसके कमरे में उसे देखने गया, तो वह वहाँ नहीं था। ताले में किसी के नाम उसकी चिट लगी थी, "मैं रात को देर से आऊँगा। मेरा इन्तज़ार मत करना।" तीन दिन बाद मैं फिर गया, तो पता चला कि उसके मालिक-मकान ने एक रात अपनी बीवी को बुरी तरह पीट दिया था... उस औरत के रोने-चिल्लाने की आवाज़ सुनकर वह मालिक-मकान को पीटने जा पहुँचा था। उसके बाद से बहुत कम अपने कमरे में नज़र आया था। मुझे यह अस्वाभाविक नहीं लगा क्योंकि एक बार जब दफ़्तर में उसके सामने की कुर्सी पर बैठने वाले अधेड़ बैचलर की हार्ट-फ़ेल से मौत हो गयी थी, तो वह कई दिन दफ़्तर नहीं गया था और कोशिश करता रहा था कि उसकी मेज़ उस कमरे से उठवाकर दूसरे कमरे में रखवा दी जाये।

पर कल मुलाक़ात होने पर वह मुझे हमेशा की तरह मिला था। न उसने अपने मालिक-मकान का ज़िक्र किया था, न ही अपनी सेहत की शिकायत की थी। बल्कि मैंने पूछा कि अब तबीयत कैसी है, तो उसने आँखें मूँदकर सिर हिला दिया था कि बिल्कुल ठीक है... हालाँकि जिस तरह

वह मुझे उदास-सा लगता था, उससे मुझे लगता था कि वह कोई गलत बात करना चाहता है। मैं था या हाथी. . . वह मैं कब से अपने ऐसे गारंटी गहरा था।

एक परिचित चेहरा सामने की भीड़ में हमारी तरफ़ आ रहा था। सफ़ेद बाल और मूँछें दाढ़ी। और नज़दीक आने पर भी वह व्यक्ति मुसकराता हुआ पास आ खड़ा हुआ।

"क्या हो रहा है ?" उसने बारी-बारी से दोनों को देखते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, ऐसे ही खड़े थे," मैंने कहा। इस पर वह हाथ मिलाने बढ़ने को हुआ, तो अचानक उसकी नज़र उनकी हाथ पर पड़ गयी। "यह क्या हुआ है यार ?" उसने पूछ लिया।

"यह कुछ नहीं है," उसका हाथ जेब में रखकर नीचे चला गया। "कल खिड़की खोलते हुए कट गया था. . .खिड़की के शीशे से। बन्द खिड़की थी. . .खुल नहीं रही थी। उसी का ज़ख्म है. . .खिड़की के शीशे का।"

"पर यह ज़ख्म कल का तो नहीं लगता," उस व्यक्ति ने अविश्वास के साथ हम दोनों की तरफ़ देख लिया।

"नहीं लगता ? नहीं लगता, तो आज का होगा, इसी वक़्त का... यह ठीक है ?"

उस व्यक्ति की आँखें पल भर के लिए चौकन्नी-सी हो रहीं। फिर एक बार सन्देह की नज़र उस हाथ पर डालकर और कुछ हमदर्दी के साथ मेरी तरफ़ देखकर वह भीड़ में आगे बढ़ गया। उसके सफ़ेद बाल सलेटी-से होकर कुछ दूर तक नज़र आते रहे।

"तो ?"

वह हिला नहीं। और भी गहरी नज़र से मेरी तरफ़ देखने लगा। जैसे आँखों से मेरी चीर-फाड़ कर रहा हो।

"कुछ देर कहीं चलकर बैठें ?" मैंने पूछा।

उसने सिर हिला दिया। "मैं अब जा रहा हूँ," उसने कहा।

"कहाँ जाओगे ?"

"अपने कमरे में. . .या जहाँ भी मन होगा।"

"पर मेरा ख़याल था कि तुम अभी कुछ और बात करना चाहोगे।"

"मैं और बात करना चाहूँगा ?" वह हँसा। "मैं अब किसी से भी और बात करना चाहूँगा ?"

"पर मैं तुमसे बात करना चाहूँगा," मैंने कहा। "तुम कहो, तो यहीं कहीं बैठते हैं। नहीं तो कुछ देर के लिए मेरे घर चल सकते हैं।"

"तुम्हारे घर ?" नियॉनलाइट्स के रंग उसकी आँखों में चमककर बुझ गये। "तुम्हारा घर कल से आज में कुछ और हो गया है ?"

बात मेरी समझ में नहीं आयी। मैं चुपचाप उसकी तरफ़ देखता रहा। वह पहले से थोड़ा और मेरी तरफ़ को झुककर बोला, "तुम्हारा घर वही है न जहाँ तुम कल भी गये थे ... अकेले ? बस के फुटबोर्ड पर लटके हुए ... ? कल तुम्हें मेरे साथ रहने से ... मुझे साथ ले जाने से ... डर लगता था ... आज नहीं लगता ? मैं जैसा बेकार कल था, वैसा ही आज भी हूँ ... बिल्कुल उतना ही बेकार और उतना ही बदचलन।"

ट्रैफ़िक की आवाज़ से हटकर एक और आवाज़—आसमान में बादल की हल्की गड़गड़ाहट। मैंने ऊपर की तरफ़ देखा ... जैसे कि देखने से ही पता चल सकता हो कि बारिश फिर तो नहीं होने लगेगी। बिजली के तारों के ऊपर धुँधला अँधेरा था और उससे भी ऊपर हल्की-हल्की सफ़ेदी। मुझे लगा कि मेरे पैर पहले से ज़्यादा चिपचिपा रहे हैं, और चप्पल के अन्दर गयी मिट्टी की परतें दोनों तलवों से चिपक गयी हैं। मेरे दोनों होंठ भी आपस में चिपक रहे थे। उन्हें कोशिश से अलग करके मैंने कहा, "तुमने कल नहीं बताया कि तुमने वह नौकरी भी छोड़ दी है।"

"तुम्हारा ख़याल है मैं नौकरी छूटने की वजह से यह बात कर रहा हूँ ?" वह अपनी आँखें अब और पास ले आया। "तुम समझते हो कि इसी वजह से कल मैं तुमसे चिपका रहना चाहता था ? ... पर ख़ातिर जमा रखो, नौकरी न रहने पर भी मैं दस आदमियों को खिला सकता हूँ ... खाता मैं कभी किसी से नहीं। और यह भी विश्वास रखो कि मुझे अभी बीस साल और जीना है ... कम-से-कम बीस साल।"

नीचे से चिपचिपाते पैर ऊपर से मुझे बहुत नंगे और बहुत ठण्डे महसूस हो रहे थे। सामने रोशनी का एक दायरा था जिसमें कई-एक स्याह

[illegible] ...गारंटी था ... जिसके बाद [illegible] नहीं आता था, पर जो [illegible] [illegible] था ।

उसने पास से गुज़रते एक टू-सीटर को हाथ के इशारे से रोका, तो मैंने फिर कहा, "चलो, घर चलते हैं । वहीं आराम से बात करेंगे ।"

"तुम जाओ अपने घर," उसने मेरा हाथ अपने ज़ख्मी हाथ से [illegible] हिला दिया । "...क्योंकि तुम्हारे लिए एक ही जगह है जहाँ तुम ज[ा] सकते हो । पर जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरे लिए एक ही जगह नहीं है... मैं कहीं भी जा सकता हूँ ।" और रेलिंग के नीचे से निकलकर वह टू-सीट[र] में जा बैठा । टू-सीटर स्टार्ट होने लगा, तो उसने बाहर की तरफ़ झु[क]कर कहा, "पर इतना तुम्हें फिर बता दूँ, कि मुझे कम-से-कम बीस सा[ल] और जीना है । तुम्हारे या दूसरे लोगों के बारे में मैं नहीं कह सकता... पर अपने बारे में कह सकता हूँ कि मुझे ज़रूर जीना है ।"

मेरे हाथ पर एक ठण्डा-सा ज़ज़ीरा बन गया था ... वहाँ जहाँ व[ह] उसके ज़ख्म से छुआ था । उसका टू-सीटर दायरे में घूमता हुआ काफ़ी आ[गे] निकल गया, तो भी मैं कुछ देर रेलिंग के सहारे वहीं खड़ा हाथ के ज़ज़ी[रे] को सहलाता रहा । दो-एक और खाली टू-सीटर सामने से निकले, प[र] मैंने उन्हें रोका नहीं । जब अचानक एहसास हुआ कि मैं बेमतलब वहा[ँ] खड़ा हूँ, तो वहाँ से हटकर कॉरिडोर में आ गया और शीशे के शो-केसों में रखे सामान को देखता हुआ चलने लगा। कुछ देर बाद मैंने पाया कि कनाट प्लेस पीछे छोड़कर मैं पार्लियामेण्ट स्ट्रीट के फ़ुटपाथ पर चल रहा हूँ ... उस स्टॉप से कहीं आगे जहाँ से कि रोज घर के लिए बस पकड़ा करता था ।

बस-स्टैण्ड की एक रात

. . . लैम्प पोस्ट के गिर्द कितने ही चक्कर काट लिये मगर रात नहीं कटी। बीस फुट की ऊँचाई पर टँगे लैम्प की मद्धिम रोशनी कभी आँखों में हल्की नींद भर देती है, फिर सहमा चौंकाकर नींद भगा देती है। अड्डा बिलकुल सुनसान है। एक कोने में दो छोटी-छोटी छकड़ा-नुमा बसें खड़ी हैं। शायद इन्हीं पुरानी मनहूस और बेडौल बसों में से एक सुबह पाँच बजे की सर्विस बनकर रवाना होगी।

एक, दो, तीन, चार . . . सर्दी की रात में जागकर समय काटने का एक ही रास्ता है कि कदम गिने जायँ। दस, ग्यारह, बारह . . बयालीस, तैंतालीस, चवालीस . . . छप्पन, सत्तावन, अट्ठावन . . . परन्तु संख्या सौ तक नहीं पहुँचती। हर बार बीच में ही खो जाती है। फिर नये सिरे से नये विश्वास के साथ गिनती आरम्भ होती है . . . एक-दो, तीन-चार, पाँच-छः, सात-आठ . . .।

बायीं तरफ टूटा-फूटा बरामदा है। बरामदे के पीछे लम्बा-सा अँधेरा कमरा है। बरामदे की बेंच पर कोई लिहाफ के नीचे करवट बदलता है। कमरे में कोई कुलमुनाता है—जैसे गहरी यातना में कराह रहा हो। देखने पर वही अँधेरा-ही-अँधेरा नजर आता है। लगता है वह अँधेरा बाहर के अँधेरे से कहीं गहरा और गर्म है। जैसे सारे कमरे में कोमल बाले रोयें भरे हों।

लैम्प-पोस्ट के पास आकर सर्दी कम नहीं होती। हाँ, अकेलापन जरूर कुछ कम होता है। टहलते हुए फुटपाथ की तरफ चले जाओ, तो दूर तक लम्बी वीरान सड़क नजर आती है। लैम्प-पोस्ट के पास आकर लगता है कि दुनिया उतनी वीरान नहीं है। मैं लैम्प-पोस्ट से टेक लगा लेता हूँ। जैसे लैम्प-पोस्ट लैम्प-पोस्ट न होकर एक इन्सान हो, और मैं उससे टेक लगाकर उसे अपनी आत्मीयता का विश्वास दिलाना चाहता होऊँ। मगर शरीर में ठण्डे लोहे की सलाख-सी गड़ जाती है और मैं उससे हटकर

टहलने लगता हूँ।

एक, दो, तीन, चार . . . ।

पर गिनती सौ तक नहीं पहुँचती। उसी पर मास्टर हुकमचन्द के डंडे की मार ताज़ा हो आती है।

"ननकू जी?"

"उनहत्तर।"

"स्टैण्ड अप...अस्सी जी?"

"उनासी।"

"अस्सी जी उनासी? हाथ सीधे कर।...अस्सी जी?"

"उना-आ . . .।"

दो डंडे दायें हाथ पर, दो बायें हाथ पर।

"अब अस्सी जी?"

अब अस्सी जी—सिसकियाँ और आँसू।

"कह, अस्सी जी नवासी।"

"अ-अ-अ . . .।"

"बोल दस बार, अस्सी जी नवासी, अस्सी जी नवासी।"

"अ-अ-अ . . .।"

"बोऽऽल।"

"अ-अ-अ . . . अँ-अँ . . . आँ-आँ-आँ-आँ . . .।"

कमरे में किसी ने सिगरेट सुलगा लिया है। हर कश के साथ अँधेरा कुछ कम होता है। कमरे में भी लिहाफ़ों और कम्बलों में लिपटी कई आकृतियाँ पड़ी हैं जो एक क्षण दिखायी देती हैं और दूसरे क्षण अदृश्य हो जाती हैं। पता नहीं चलता कि रात कितनी बीती है। शायद एक बजा है और मुझे अभी चार घण्टे इसी तरह टहलना है। या शायद चार बज चुके हैं और अब थोड़ी ही देर में उन दो मनहूस बसों में से एक खड़खड़ाती हुई पठानकोट-डलहौज़ी रोड पर चल देगी। छः-आठ मील जाकर सूर्य निकलेगा और दोनों ओर वृक्ष-पंक्तियाँ दिखाई देंगी। कुछ ही देर में दुनेरा पहुँचकर सिब्बू हलवाई की दुकान से गम-गर्म चाय पियेंगे।

सर्दी, रात और चाय।

"चाय गर्म है। धुआं उठ रहा है। हल्का-हल्का और लच्छेदार। मेरी प्याली पर नटराज नाच रहा है...।"

हिश्च् !

सिगरेट बुझ गया है मगर कमरे का अंधेरा अब उतना गाढ़ा नहीं है। कोई लगातार खांस रहा है। मन होता है कि वह व्यक्ति लगातार खांसता रहे जिससे जल्दी से सुबह हो जाये। वह खांसना बन्द कर देगा तो सुबह दूर चली जायेगी। मुझे खामोशी अच्छी नहीं लगती और न मुझसे कदम गिने जाते हैं, न ही लैम्प-पोस्ट का मुंह देखा जाता है। लगता है सर्दी पहले से बढ़ गयी है। मैं लैम्प-पोस्ट से हटकर टहलता हूँ। जैसे लैम्प-पोस्ट से लड़ाई हो। मैंने अब तक कितना चल लिया है? शायद कई मील। कितने कदम का एक मील होता है? मास्टर हरबंसलाल फिर डंडा लेकर सामने हैं।

"इकतीस हजार...।"

"इकतीस हजार...।"

"छः सौ...।"

"छः सौ...।"

"अस्सी फुट के...।"

"अस्सी फुट के...।"

"मील बनाओ।"

हम जैसे अथाह समुद्र में फेंक दिये गये हों। सवाल निकलने लगता है। स्लेट पर मास्टर हरबंसलाल का गंजा सिर और छोटी-छोटी आंखें बन जाती हैं। एक तरफ इकतीस हजार, दूसरी तरफ छः सौ और तीसरी तरफ अस्सी...।

सिर पर एक चपत पड़ती है।

"यह फुटों के मील बना रहा है? स्टैण्ड अप!"

खड़े हो जाते हैं। सिर झुका है।

"यह क्या बन रहा है?"

सिर झुका रहता है। मन में गुदगुदी उठती है। पर चेहरे पर आध्यात्मिक मौन है।

"[illegible] नहीं [illegible] में [illegible] ।"

[illegible]

[illegible] ... । [illegible] कदम गिने जायें । [illegible] । [illegible] एक, दो, तीन, चार । स्टेशन पर शायद [illegible] मतलब इस [illegible] में ...।

स्टेशन अन्दर और बाहर से सुनसान है।

हाथ झलते हुए—आखिर अर्थ में—वापस लौटते हैं।

दोनों तरफ़ [illegible], आठ-आठ, बसें पंक्तियों में खड़ी हैं। एक तरफ़ कश्मीर गवर्नमेंट ट्रांसपोर्ट और एम० टी० राधाकिशन की बसें हैं, दूसरी तरफ़ कुल्लू वैली ट्रांसपोर्ट और हिमाचल राज्य परिवहन की। उन पंक्तियों के बीच से गुजरते हुए अनायास टाँगें तन जाती हैं...लेफ़्ट...लेफ़्ट... लेफ़्ट...एक दो, एक दो, एक दो, लेफ़्ट...लेफ़्ट...लेफ़्ट...।

हज़ारीलाल ड्रिल मास्टर भौंहें चढ़ा रहा है।

"लाइन में चलो।"

लेफ़्ट...लेफ़्ट...लेफ़्ट...।

"आगे के लड़के की गरदन देखो।"

लेफ़्ट...लेफ़्ट...लेफ़्ट...।

आगे के लड़के की गरदन पर मैल जमा है।

"मास्टरजी, यह नहाकर नहीं आया।"

"डोंट टॉक!"

लेफ़्ट राइट...लेफ़्ट...लेफ़्ट...लेफ़्ट...।

"मास्टरजी, यह पीछे से किक मारता है।"

"शट् अप !"

लेफ्ट . . . लेफ्ट . . . लेफ्ट . . . !

दूर से अड्डे पर आग दिखायी देती है। अड्डे पर आग कहाँ से आ गयी ? धुएँ से घिरी एक लपट उठ रही है। अभी यह लपट छोटी है। धीरे-धीरे फैलकर बड़ी हो जायगी। फिर वह आस-पास की हर चीज़ को घेर लेगी। दोनों छकड़ानुमा बसें जल कर राख हो जायेंगी। कमरे में बन्द अँधेरे के कोमल रोयें जल उठेंगे।

मगर लपट छोटी हो जाती है। अड्डे पर एक अँगीठी जल रही है और धुआँ छोड़ रही है। आस-पास चार-छः आकृतियाँ जमा हैं। काँपते प्रकाश में चेहरों की केवल रेखायें ही दिखायी देती हैं। एक स्त्री का ढीला-ढाला शरीर सरककर आग के बहुत निकट आ जाता है।

"चौधराइन, आज कुछ कमाई हुई ?"

चौधराइन मुँह बिचका देती है।

"नूरजहाँ बेगम आजकल बात नहीं करतीं !"

नूरजहाँ बेगम कुछ न कहकर पिंडली खुजलाने लगती है।

"चाय पियेगी ?"

नूरजहाँ बेगम फिर मुँह बिचका देती है।

"नूरजहाँ बेगम, उदास क्यों है ? इसलिए कि तेरा बाप कोढ़ी मर गया है ?"

नूरजहाँ बेगम चुपचाप आग तापती रहती है।

"आज सर्दी बहुत है।"

"नूरजहाँ बेगम को दुअन्नी दे और चाय ले आ।"

"क्यों नूरजहाँ ?"

नूरजहाँ कुछ नहीं कहती।

"आज चौधराइन मस्ती में है।"

"अरे तुम चौधराइन को क्या समझते हो ? किसी खानदान में पैदा होती, तो क्लब में डानस किया करती।"

"हा-हा-हा !"

"चौधराइन डानस करेगी ?"

"[illegible]!"

"[illegible]।"

"अरे भई, बेचारी सर्दी में मर जायेगी।"

"जब आग अँगीठी है, तब क्या मरेगी!"

"[illegible]!" अँगीठी भभक उठती है।

"आज दिमाग गर्म है।"

"नूरजहाँ बेगम, आज क्या खाया है?"

"मुर्ग मुसल्लम।"

"हा-हा-हा!"

क़दम आगे की तरफ़ बढ़ते हैं और लौट पड़ते हैं। फिर बढ़ते हैं
फिर लौट पड़ते हैं।

पिताजी अपनी घूमनेवाली कुर्सी पर बैठे हैं।

"अच्छे लड़के गन्दे लड़कों के साथ नहीं खेलते। समझे?"

"जी।"

"कल से घर के अन्दर खेला करो। मैं अब बाजार के लड़कों के
न देखूँ।"

"जी।"

"जाकर हाथ-मुँह धोओ और कपड़े बदलो।"

"जी।"

और मैं दूर टहलता रहता हूँ, हालांकि हाथ-पैर ठिठुरे जाते हैं
दाँतों की किटकिटी बार-बार बज उठती है।

कमरे में कुछ हलचल महसूस हो रही है। शायद सुबह होने वाली
कम्बलों में लिपटे दो व्यक्ति कमरे से निकल आते हैं। उसकी केवल न
और आँखें ही दिखायी देती हैं। अँगीठी के पास जाकर वे आँखें अधिक
भाव से सामने चमकती आग को देखती हैं। अँगीठी के गिर्द
आकृतियाँ थोड़ा-थोड़ा सरक जाती हैं।

"आ जाइए, बाबूजी!"

"बाबूजी, पाँच बजे की बस पर जायेंगे?"

"कितना सामान है, बाबूजी?"

"हट बे, बाबूजी को सेंकने दे।"

कम्बलों में लिपटे दोनों बाबू अँगीठी पर अधिकार जमा लेते हैं। शेष आकृतियाँ हटने लगती हैं। चौधराइन सरककर लैम्प-पोस्ट के नीचे चली जाती है। एक आदमी सीटी बजाता हुआ बस के मड-गार्ड पर जा बैठता है। केवल एक बुड्ढा कुली आग के पास रह जाता है। वह अँगीठी से इस तरह सटकर बैठा है जैसे अपने हाथों की झुलसी चमड़ी को जला लेना चाहता हो। कमरे से दो-तीन व्यक्ति और निकल आते हैं।

"आ जाओ बसन्तराम जी, यहाँ आग के पास आ जाओ।"

दोनों-तीनों बसन्तराम आग के पास पहुँच जाते हैं। मैं आदमों की गिनती भूल चुका हूँ। लैम्प-पोस्ट ने चौधराइन से दोस्ती कर ली है। वह उससे टेक लगाकर पिंडली खुजला रही है। बस के मड-गार्ड पर बैठा व्यक्ति ऊँची आवाज़ में अपने दिल के हज़ार टुकड़ों की गाथा सुना रहा है। मैं टहलता हुआ अँगीठी के पास पहुँच जाता हूँ। इस बार अच्छे लड़के को डाँट नहीं पड़ती क्योंकि अँगीठी के पास सब बसन्तराम खड़े हैं।

"बहुत सर्दी है," एक काँप कर कहता है।

"बड़ी जबर-जुलम सर्दी है जी," बुड्ढा कुली आँखें उठाकर सबकी तरफ देखता है। उसकी आँखें इस बात पर उनसे दोस्ती करना चाहती हैं कि उन सबको बराबर की जबर-जुलम सर्दी लग रही है। मगर उनमें से कोई मास्टर हरबंसलाल बोल उठता है, "अरे जबर-जुलम क्या होता है? बोलना हो तो ठीक लफ़्ज़ बोल—जाबिर और जालिम।"

बुड्ढा कुली हक्का-बक्का उसकी तरफ देखता रहता है।

जाबिर और जालिम!

जेर और जबर!

"मास्टरजी, जेर कहाँ लगती है?"

एक डंडा टखनों पर।

"यहाँ... और जबर यहाँ।"

और एक डंडा गरदन पर।

जेर टखनों पर। जबर गरदन पर।

कमरे में [illegible] और निस्तब्धता है। आग के गिर्द घेरा समाप्त हो गया है। बूढ़े बाबा की आँखें अँगीठी में उतर चुकी हैं, जैसे सुलगते [illegible] पहुँचकर [illegible] में ही लिपट जाती हो। वह खाँसता है और आगे से सिकुड़ जाता है। उसके हाथ अँगीठी के [illegible] दिये जाते हैं। अँगीठी बीच-बीच में चिनगारियाँ छोड़ देती है। कुछ कोयले [illegible] हो गये हैं। बूढ़ा [illegible] गर्म हाथ मुँह पर फेरता है।

"बाबा, सारी आग तो तुमने रोक रखी है।"

"अब उठ जा, दूसरों को भी सेंकने दे।"

बाबा खाँसता है, ममता की दृष्टि से सबकी तरफ देखता है और थोड़ा सरक जाता है।

"बूढ़े को जान बहुत प्यारी है।"

बूढ़ा आँखों से उसका अनुमोदन करना चाहता है, पर तब तक उसके और अँगीठी के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। वह एक दार्शनिकता की साँस छोड़कर उठ खड़ा होता है। ठिठुरकर हाथ बगलों में दबा लेता है, जैसे अपने आस-पास की गर्मी को समेटकर साथ ले जाना चाहता हो।

अँगीठी चिनगारियाँ छोड़ रही है।

"क्यों भाई साहब, क्या खयाल है, गवा हिन्दुस्तान को मिल जायेगा या नहीं?"

"गोआ हिन्दुस्तान का है साहब, और हिन्दुस्तान का ही रहेगा।"

"कहते हैं गवा बहुत खूबसूरत जगह है।"

"जी हाँ, गोआ का लैण्डस्केप—क्या कहने हैं!"

"यहाँ से गवा किस रास्ते से जाते हैं?"

"यहाँ से गोआ जाना हो तो पहले पूना, पूना से लौंडा, फिर वहाँ से गाड़ी में मार्मुगाव...मार्मुगाव नेचुरल हार्बर है। बहुत खूबसूरत जगह है।"

"आप गवा गये हैं?"

"जी हाँ, मैं एक बार गोआ हो आया हूँ।"

"कहते हैं गवा में सभी कुछ बहुत सस्ता है।"

"माफ कीजिये भाई साहब, लफ्ज गया नहीं गोआ है।"

"एक ही बात है जी, गया हुआ या गोआ हुआ।"

"यह साहब, हिन्दुस्तानी मेंटेलिटी है।"

"जैसे आप हिन्दुस्तानी नहीं हैं!"

कोयले सुलग गये हैं। गर्मी शरीर में रच रही है। अब दाँतों की किटकिटी नहीं बजती। मड-गार्ड पर बैठा कुली अपने दिल के टुकड़े बिखेरकर खामोश हो गया है और इस तरह उकड़ूँ बैठा है जैसे सिर से पैर तक शरीर के हर अंग को छाती में समेट लेना चाहता हो। बूढ़ा कुली खाँसता हुआ फुटपाथ पर खड़ा है और इस तरह दायीं तरफ देख रहा है जैसे उधर से सुबह के आने का इन्तजार कर रहा हो। चौपराइन लैम्प-पोस्ट के पास अर्द्धचन्द्राकार होकर लेट गयी है और वह अर्द्धचन्द्र धीरे-धीरे छोटा होता जा रहा है।

अँगीठी के पास गोआ की समस्या को लेकर लड़ाई लड़ी जा रही है। एक भाई साहब चौबीस घंटे के अन्दर-अन्दर पुर्तगालियों को गोआ से निकाल देना चाहते हैं। दूसरे वाइन, विमेन एण्ड वांचिअ के बारे में सुनकर अन्तर्मुख हो गये हैं। मेरे शरीर में गर्म बुँदकियाँ भर रही हैं। मैं लैम्प-पोस्ट की तरफ देखता हूँ, जैसे कहना चाहता होऊँ—क्यों ये?

"हीरे!" बरामदे की तरफ से आवाज आती है।

मड-गार्ड पर बैठा कुली चौंकता है और भागता हुआ बरामदे की तरफ चला जाता है। फिर वह नये सिरे से दिल के टुकड़े बिखेरता हुआ अँगीठी के पास आ जाता है।

"हट जाओ सा'ब।"

और इससे पहले कि साहब हटने की बात सोचें, वह दोनों कूड़ों से अँगीठी को उठा लेता है।

"अबे कहाँ ले जा रहा है?"

"मैनेजर साहब के कमरे में।"

अँगीठी के प्रकाश में उसके चेहरे पर एक लम्बी मुसकराहट प्रकट होती है। वह इस तरह टाँगें फैलाकर कंधे हिलाता हुआ जाता है जैसे किसी मोर्चे में उसे फतह का सेहरा हासिल हुआ हो।

[illegible] कोई [illegible] रह गयी है। [illegible] के अलग-अलग मुलाकातियों का [illegible] आई साहब अपना मकान अच्छी तरह [illegible] रहे हैं। गजा और गांजा का मेल करनेवाले साहब निश्चय कर रहे हैं कि मैनेजर को अँगीठी अपने कमरे में रखवाने का कोई अधिकार नहीं है।

मैं अंगारों से हाथ सेंकने लगता हूँ। आग के पास से हटकर सर्दी और भी ज़ाहिर और ज़ालिम मालूम होती है। सारे शरीर के रोंगटे खड़े हैं और आर-पार सिर से पैर तक एक सिहरन दौड़ जाती है। अँगीठी के पास जितने लोग खड़े थे, वे न जाने किन कोनों में जा समाये हैं! मैं फुटपाथ तक जाकर लौटता हूँ। शरीर फिर कांप जाता है। लैम्प-पोस्ट मुसकरा रहा है। वह एकटक देखता जाता है। जैसे अब वह कहना चाहता हो——क्यों बे ?

मलबे का मालिक

साढ़े सात साल के बाद वे लोग लाहौर से अमृतसर आये थे। हॉकी का मैच देखने का तो बहाना ही था, उन्हें ज्यादा चाव उन घरों और बाजारों को फिर से देखने का था जो साढ़े सात साल पहले उनके लिए पराये हो गये थे। हर सड़क पर मुसलमानों की कोई-न-कोई टोली घूमती नजर आ जाती थी। उनकी आँखें इस आग्रह के साथ वहाँ की हर चीज को देख रही थीं जैसे वह शहर साधारण शहर न होकर एक अच्छा-खासा आकर्षण-केन्द्र हो।

तंग बाजारों में से गुजरते हुए वे एक-दूसरे को पुरानी चीजों की याद दिला रहे थे.. देख—फतहदीना, मिसरी बाजार में अब मिसरी की दुकानें पहले से कितनी कम रह गयी हैं! उस नुक्कड़ पर सुक्खी भठियारिन की भट्ठी थी, जहाँ अब वह पानवाला बैठा है। ..यह नमक-मण्डी देख लो, खान साहब! यहाँ की एक-एक लालाइन वह नमकीन होती है कि बस...!

बहुत दिनों के बाद बाजारों में तुर्रेदार पगड़ियाँ और लाल तुर्की टोपियाँ नजर आ रही थीं। लाहौर से आये मुसलमानों में काफ़ी संख्या ऐसे लोगों की थी जिन्हें विभाजन के समय मजबूर होकर अमृतसर से जाना पड़ा था। साढ़े सात साल में आये अनिवार्य परिवर्तनों को देखकर कहीं उनकी आँखों में हैरानी भर जाती और कहीं अफसोस घिर आता—वल्लाह! कटरा जयमलसिंह इतना चौड़ा कैसे हो गया? क्या इस तरफ के सब-के-सब मकान जल गये थे?...यहाँ हकीम आसिफ़अली की दुकान थी न? अब यहाँ एक मोची ने कब्जा कर रखा है?

और कहीं-कहीं ऐसे भी वाक्य सुनायी दे जाते—वली, यह मस्जिद ज्यों-की-त्यों खड़ी है? इन लोगों ने इसका गुरद्वारा नहीं बना दिया?

जिस रास्ते से भी पाकिस्तानियों की टोली गुजरती, शहर के लोग उत्सुकतापूर्वक उस तरफ देखते रहते। कुछ लोग अब भी मुसलमानों

को आते देखकर शंकित-से रास्ते से हट जाते, जबकि दूसरे आगे बढ़कर उनसे बगलगीर होने लगते। ज्यादातर वे आगन्तुकों से ऐसे-ऐसे सवाल पूछते—कि आजकल लाहौर का क्या हाल है? अनारकली में अब पहले जितनी रौनक होती है या नहीं? सुना है, शाहालमी गेट का बाजार पूरा नया बना है? कृष्णनगर में तो कोई खास तब्दीली नहीं आयी? वहाँ का रिश्वतपुरा क्या सचमुच रिश्वत के पैसे से बना है? कहते हैं, पाकिस्तान में अब बुर्का बिलकुल उड़ गया है, यह ठीक है? ...इन सवालों में इतनी आत्मीयता झलकती थी कि लगता था लाहौर एक शहर नहीं, हजारों लोगों का सगा सम्बन्धी है, जिसके हाल जानने के लिए वे उत्सुक हैं। लाहौर से आये लोग उस दिन शहर-भर के मेहमान थे जिनसे मिलकर और बातें करके लोगों को बहुत खुशी हो रही थी।

बाजार बाँसाँ अमृतसर का एक उजड़ा-सा बाजार है, जहाँ विभाजन से पहले ज्यादातर निचले तबके के मुसलमान रहते थे। वहाँ ज्यादातर बाँसों और शहतीरों की ही दुकानें थीं जो सब-की-सब एक ही आग में जल गयी थीं। बाजार बाँसाँ की वह आग अमृतसर की सबसे भयानक आग थी जिससे कुछ देर के लिए तो सारे शहर के जल जाने का अंदेशा पैदा हो गया था। बाजार बाँसाँ के आस-पास के कई मुहल्लों को तो उस आग ने अपनी लपेट में ले ही लिया था। खैर, किसी तरह वह आग काबू में आ गयी थी, पर उसमें मुसलमानों के एक-एक घर के साथ हिन्दुओं के भी चार-चार, छः-छः घर जलकर राख हो गये थे। अब साढ़े सात साल में उनमें से कई इमारतें फिर से खड़ी हो गयी थीं, मगर जगह-जगह मलबे के ढेर अब भी मौजूद थे। नयी इमारतों के बीच-बीच वे मलबे के ढेर एक अजीब वातावरण प्रस्तुत करते थे।

बाजार बाँसाँ में उस दिन भी चहल-पहल नहीं थी क्योंकि उस बाजार के रहने वाले ज्यादातर लोग तो अपने मकानों के साथ ही शहीद हो गये थे, और जो बचकर चले गये थे, उनमें से शायद किसी में भी लौटकर आने की हिम्मत नहीं रही थी। सिर्फ़ एक दुबला-पतला बुड्ढा मुसलमान ही उस दिन उस वीरान बाजार में आया और वहाँ की नयी और जली हुई इमारतों को देखकर जैसे भूलभुलैयाँ में पड़ गया। बायीं

तरफ जानेवाली गली के पास पहुँचकर उसके पैर अंदर मुड़ने को हुए, मगर फिर वह हिचकिचाकर वहीं बाहर ही खड़ा रह गया। जैसे उसे विश्वास नहीं हुआ कि वह वही गली है जिसमें वह जाना चाहता है। गली में एक तरफ कुछ बच्चे कीड़ी-काड़ा खेल रहे थे और कुछ फासले पर दो स्त्रियाँ ऊँची आवाज में चीखती हुई एक-दूसरी को गालियाँ दे रही थीं।

"सब कुछ बदल गया, मगर बोलियाँ नहीं बदलीं!" बुड्ढे मुसलमान ने धीमे स्वर में अपने से कहा और छड़ी का सहारा लिये खड़ा रहा। उसके घुटने पाजामे से बाहर को निकल रहे थे। घुटनों से थोड़ा ऊपर शेरवानी में तीन-चार पैवन्द लगे थे। गली से एक बच्चा रोता हुआ बाहर आ रहा था। उसने उसे पुचकारा, "इधर आ, बेटे! आ, तुझे चिज्जी देंगे, आ!" और वह अपनी जेब में हाथ डाल कर उसे देने के लिए कोई चीज ढूँढ़ने लगा। बच्चा एक क्षण के लिए चुप कर गया, लेकिन फिर उसी तरह होंठ बिसूर कर रोने लगा। एक सोलह-सत्रह साल की लड़की, गली के अंदर से दौड़ती हुई आयी और बच्चे को बाँह से पकड़कर गली में ले चली। बच्चा रोने के साथ-साथ अब अपनी बाँह छुड़ाने के लिए मचलने लगा। लड़की ने उसे अपनी बाँहों में उठाकर साथ सटा लिया और उसका मुँह चूमती हुई बोली, "चुप कर, खसम-खाने! रोयेगा, तो वह मुसलमान तुझे पकड़कर ले जायेगा! कह रही हूँ, चुप कर!"

बुड्ढे मुसलमान ने बच्चे को देने के लिए जो पैसा निकाला था, वह उसने वापस जेब में रख लिया। सिर से टोपी उतारकर वहाँ थोड़ा खुजलाया और टोपी अपनी बगल में दबा ली। उसका गला खुश्क हो रहा था और घुटने थोड़ा काँप रहे थे। उसने गली के बाहर की एक बंद दुकान के तख्ते का सहारा ले लिया और टोपी फिर से सिर पर लगा ली। गली के सामने जहाँ पहले ऊँचे-ऊँचे शहतीर रखे रहते थे, वहाँ अब एक तिमंज़िला मकान खड़ा था। सामने बिजली के तार पर दो मोटी-मोटी चीलें बिल्कुल जड़-सी बैठी थीं। बिजली के खंभे के पास थोड़ी धूप थी। वह कई पल धूप में उड़ते ज़र्रों को देखता रहा। फिर उसके मुँह से निकला, "या मालिक!"

एक नवयुवक चाबियों का गुच्छा घुमाता गली की तरफ आया। बुड्ढे को वहाँ खड़े देखकर उसने पूछा, "कहिये मियाँजी, यहाँ किस लिए

लगते हैं?"

बुड्ढे मुसलमान के होंठों और आँखों में हल्की-सी पहचान झलक [illegible] हुई। उसने होंठों पर ज़बान फेरी और नवयुवक को ध्यान से देखते हुए कहा, "बेटे, तेरा नाम मनोरी है न?"

नवयुवक ने [illegible] हिलाना बंद करके अपनी मुट्ठी में ले लिया और कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, "आपको मेरा नाम कैसे मालूम है?"

"बारह साल पहले तू इतना-सा था," कहकर बुड्ढे ने मुस्कराने की कोशिश की।

"आप आज पाकिस्तान से आये हैं?"

"हाँ! पहले हम इसी गली में रहते थे," बुड्ढे ने कहा। "मेरा लड़का चिराग़दीन तुम लोगों का दर्ज़ी था। तक़सीम से छः महीने पहले हम लोगों ने यहाँ अपना नया मकान बनवाया था।"

"ओ, ग़नी मियाँ!" मनोरी ने पहचानकर कहा।

"हाँ, बेटे, मैं तुम लोगों का ग़नी मियाँ हूँ! चिराग़ और उसके बीवी-बच्चे तो अब मुझे मिल नहीं सकते, मगर मैंने सोचा कि एक बार मकान की ही सूरत देख लूँ!" बुड्ढे ने टोपी उतारकर सिर पर हाथ फेरा, और अपने आँसुओं को बहने से रोक लिया।

"तुम तो शायद काफ़ी पहले यहाँ से चले गये थे," मनोरी के स्वर में संवेदना भर आयी।

"हाँ, बेटे, यह मेरी बदबख़्ती थी कि मैं अकेला पहले निकलकर चला गया था। यहाँ रहता, तो उनके साथ मैं भी..." कहते हुए उसे एहसास हो आया कि यह बात उसे नहीं कहनी चाहिए। उसने बात को मुँह में रोक लिया, पर आँखों में आये आँसुओं को नीचे बह जाने दिया।

"छोड़ो ग़नी मियाँ, अब उन बातों को सोचने में क्या रखा है?" मनोरी ने ग़नी की बाँह अपने हाथ में ले ली। "चलो तुम्हें तुम्हारा घर दिखा दूँ।"

गली में खबर इस तरह फैली थी कि गली के बाहर एक मुसलमान

खड़ा है जो रामदासी के लड़के को उठाने जा रहा था...उसकी बहन वक़्त पर उसे पकड़ लायी, नहीं तो वह मुसलमान उसे ले गया होता। यह ख़बर मिलते ही जो स्त्रियाँ गली में पीढ़े बिछाकर बैठी थीं, वे पीढ़े उठाकर घरों के अन्दर चली गयीं। गली में खेलते बच्चों को भी उन्होंने पुकार-पुकार कर घरों के अन्दर बुला लिया। मनोरी गनी को लेकर गली में दाख़िल हुआ, तो गली में सिर्फ़ एक फेरीवाला रह गया था, या रक्खा पहलवान जो कुएँ पर उगे पीपल के नीचे बिखरकर सोया था। हाँ, घरों की खिड़कियों में से और किवाड़ों के पीछे से कई चेहरे गली में झाँक रहे थे। मनोरी के साथ ग़नी को आते देखकर उनमें हल्की चेहमेगोइयाँ शुरू हो गयीं। दाढ़ी के सब बाल सफ़ेद हो जाने के बावजूद चिरागदीन के बाप अब्दुलग़नी को पहचानने में लोगों को दिक़्क़त नहीं हुई।

"वह था तुम्हारा मकान," मनोरी ने दूर से एक मलबे की तरफ़ इशारा किया। गनी पल-भर ठिठक कर फटी-फटी आँखों से उस तरफ़ देखता रहा। चिराग और उसके बीवी-बच्चों की मौत को वह काफ़ी पहले स्वीकार कर चुका था। मगर अपने नये मकान को इस शक्ल में देखकर उसे जो झुरझुरी हुई, उसके लिए वह तैयार नहीं था। उसकी ज़बान पहले से और खुश्क हो गयी और घुटने भी ज़्यादा काँपने लगे।

"यह मलबा?" उसने अविश्वास के साथ पूछ लिया।

मनोरी ने उसके चेहरे के बदले हुए रंग को देखा। उसकी बाँह को थोड़ा और सहारा देकर जड़-से स्वर में उत्तर दिया, "तुम्हारा मकान उन्हीं दिनों जल गया था।"

गनी छड़ी के सहारे चलता हुआ किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी-ही-मिट्टी थी जिसमें से जहाँ-तहाँ टूटी और जली हुई ईंटें बाहर झाँक रही थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का निकाला जा चुका था। केवल एक जले हुए दरवाज़े का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ़ दो जली हुई अलमारियाँ थीं जिनकी कालिख पर अब सफ़ेदी की हल्की-हल्की तह उभर

आयी थी। कुत्ता [illegible] के पास से हटकर गली में आया, "[illegible] रह गया है, [illegible] और [illegible] और वह वहीं [illegible] हुए चौखट को पकड़कर बैठ गया। धीरे-धीरे उसका सिर भी चौखट से जा लगा और उसके मुँह से सिसकने की-सी आवाज़ निकली, "हाय ओए चिरागदीना!"

जली हुई किवाड़ का वह चौखट मलबे में से सिर निकाले साढ़े सात साल खड़ा तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह भुरभुरा गयी थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़कर आसपास बिखर गये। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ गिरे। उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छः-आठ इंच दूर नाली के साथ-साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर-उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिए सूराख ढूँढ़ता हुआ ज़रा-सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो-एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ़ मुड़ जाता।

खिड़कियों से झाँकनेवाले चेहरों की संख्या अब पहले से कहीं ज़्यादा हो गयी थी। उनमें चेहमेगोइयाँ चल रही थीं कि आज कुछ-न-कुछ ज़रूर होगा. . .चिरागदीन का बाप गनी आ गया है, इसलिए साढ़े सात साल पहले की वह सारी घटना आज अपने-आप खुल जायेगी। लोगों को लग रहा था जैसे वह मलबा ही गनी को सारी कहानी सुना देगा—कि शाम के वक़्त चिराग़ ऊपर के कमरे में खाना खा रहा था जब रक्खे पहलवान ने उसे नीचे बुलाया—कहा कि वह एक मिनट आकर उसकी बात सुन ले। पहलवान उन दिनों गली का बादशाह था। वहाँ के हिन्दुओं पर ही उसका काफ़ी दबदबा था—चिराग़ तो ख़ैर मुसलमान था। चिराग़ हाथ का कौर बीच में ही छोड़कर नीचे उतर आया। उसकी बीवी जुबैदा और दोनों लड़कियाँ, किश्वर और सुलताना, खिड़कियों से नीचे झाँकने लगीं। चिराग़ ने ड्योढ़ी से बाहर क़दम रखा ही था कि पहलवान ने उसे कमीज़ के कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ़ खींच लिया और गली में गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। चिराग़ उसका छुरेवाला हाथ पकड़कर चिल्लाया, "रक्खे पहलवान, मुझे मत मार! हाय, कोई मुझे बचाओ!" ऊपर से जुबैदा, किश्वर और सुलताना भी हताश

स्वर में चिल्लायीं और चीखती हुई नीचे ड्योढ़ी की तरफ दौड़ीं। रक्खे के एक शागिर्द ने चिराग की जद्दोजहद करती बाँहें पकड़ लीं और रक्खा उसकी जाँघों को अपने घुटनों से दबाये हुए बोला, "चीखता क्यों है, भैण के . . तुझे मैं पाकिस्तान दे रहा हूँ, ले पाकिस्तान!" और जब तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना नीचे पहुँचीं, चिराग को पाकिस्तान मिल चुका था।

आस-पास के घरों की खिड़कियाँ तब बंद हो गयी थीं। जो लोग इस दृश्य के साक्षी थे, उन्होंने दरवाजे बंद करके अपने को इस घटना के उत्तर-दायित्व से मुक्त कर लिया था। बंद किवाड़ों में भी उन्हें देर तक जुबैदा, किश्वर और सुलताना के चीखने की आवाज़ें सुनायी देती रहीं। रक्खे पहलवान और उसके साथियों ने उन्हें भी उसी रात पाकिस्तान दे दिया, मगर दूसरे तवील रास्ते से। उनकी लाशें चिराग के घर में न मिलकर बाद में नहर के पानी में पायी गयीं।

दो दिन चिराग के घर की छानबीन होती रही थी। जब उसका सारा सामान लूटा जा चुका, तो न जाने किसने उस घर को आग लगा दी थी। रक्खे पहलवान ने तब कसम खायी थी कि वह आग लगाने वाले को ज़िंदा ज़मीन में गाड़ देगा क्योंकि उस मकान पर नज़र रखकर ही उसने चिराग को मारने का निश्चय किया था। उसने उस मकान को शुद्ध करने के लिए हवन-सामग्री भी ला रखी थी। मगर आग लगाने वाले का तब से आज तक पता नहीं चल सका था। अब साढ़े सात साल से रक्खा उस मलबे को अपनी जायदाद समझता आ रहा था, जहाँ न वह किसी को गाय-भैंस बाँधने देता था और न ही खुमचा लगाने देता था। उस मलबे से बिना उसकी इजाज़त के कोई एक ईंट भी नहीं निकाल सकता था।

लोग आशा कर रहे थे कि यह सारी कहानी ज़रूर किसी-न-किसी तरह गनी तक पहुँच जायेगी. . .जैसे मलबे को देखकर ही उसे सारी घटना का पता चल जायेगा। और गनी मलबे की मिट्टी को नाखूनों से खोद-खोदकर अपने ऊपर डाल रहा था और दरवाज़े के चौखट को बाँह में लिये हुए रो रहा था, "बोल, चिरागदीना, बोल! तू कहाँ चला गया, ओए? ओ किश्वर! ओ सुलताना! हाय, मेरे बच्चे ओएऽऽ! गनी को पीछे क्यों

मन पूछे, तो मेरा यह मिट्टी भी छोड़कर जाने को मन नहीं करता!"
और उसकी आँखें फिर छलछला आयीं।

पहलवान ने अपनी टाँगें समेट लीं और अँगोछा कुएँ की मुँडेर से उठाकर कंधे पर डाल लिया। लच्छे ने चिलम उसकी तरफ़ बढ़ा दी। वह कश खींचने लगा।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह?" गनी किसी तरह अपने आँसू रोक कर बोला। "तुम लोग उसके पास थे, सब में भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी। अगर वह चाहता, तो तुम में से किसी के घर में नहीं छिप सकता था? उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी?"

"ऐसे ही है," रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज़ में एक अस्वाभाविक-सी गूँज है। उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गये थे। मूँछों के नीचे से पसीना उसके होंठों पर आ रहा था। उसे माथे पर किसी चीज़ का दबाव महसूस हो रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी।

"पाकिस्तान में तुम लोगों के क्या हाल हैं?" उसने पूछा। उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था। उसने अँगोछे से बगलों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुँह में खींचकर गली में थूक दिया।

"क्या हाल बताऊँ, रक्खे," गनी दोनों हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला। "मेरा हाल तो मेरा ख़ुदा ही जानता है। चिराग़ वहाँ साथ होता, तो और बात थी।...मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल। पर वह ज़िद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं जाऊँगा—यह अपनी गली है, यहाँ कोई ख़तरा नहीं है। भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में ख़तरा न हो, पर बाहर से तो ख़तरा आ सकता है! मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी!... रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब जान पर बन आयी, तो रक्खे के रोके भी न रुकी।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी। अपनी कमर और जाँघों के ... उसे सख़्त दबाव महसूस हो रहा था। पेट की अँतड़ियों के ... ोई चीज़

उसकी साँस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुवों में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझड़ियाँ-सी ऊपर से उतरती और तैरती हुई उसकी आँखों के सामने से निकल जातीं। उसे अपनी ज़बान और होंठों के बीच एक फ़ासला-सा महसूस हो रहा था। उसने अँगोछे से होंठों के कोनों को साफ किया। साथ ही उसके मुँह से निकला, "हे प्रभु, तू ही है, तू ही है, तू ही है!"

गनी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आँखों के गिर्द दायरे गहरे हो गये हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "जो होना था, हो गया रक्खिया! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! खुदा नेक की नेकी बनाये रखे और बद की बदी माफ करे! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूँगा कि चिराग़ को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे!" और वह छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, "अच्छा, रक्खे पहलवान!"

रक्खे के गले से मद्धिम-सी आवाज़ निकली। अँगोछा लिये हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। गनी हसरत-भरी नज़र से आसपास देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयाँ चलती रहीं—कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर ज़रूर गनी को सब कुछ बता दिया होगा...कि गनी के सामने रक्खे का तालू कैसे खुश्क हो गया था!...रक्खा अब किस मुँह से लोगों को मलबे पर गाय बाँधने से रोकेगा?...बेचारी जुबैदा! कितनी अच्छी थी वह!...रक्खे मरदूद का घर न घाट, इसे किसी की माँ-बहन का लिहाज़ था?

थोड़ी देर में स्त्रियाँ घरों से गली में उतर आयीं। बच्चे गली में गुल्ली-डण्डा खेलने लगे। दो बारह-तेरह साल की लड़कियाँ किसी बात पर एक दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गयीं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएँ पर बैठा खँखारता और चिलम फूँकता रहा। कई लोगों ने वहाँ गुज़रते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है आज गनी पाकिस्तान से आया था।"

"हाँ, आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

सच पूछो, तो मेरा यह मिट्टी को छोड़कर जाने को मन नहीं करता !" और उसकी आँखें फिर छलछला आयीं ।

पहलवान ने अपनी टाँगें समेट लीं और अँगोछा कुएँ की मुँडेर से उठा कर कंधे पर डाल लिया । लच्छे ने चिलम उसकी तरफ़ बढ़ा दी । वह कश खींचने लगा ।

"तू बता, रक्खे, यह सब हुआ किस तरह ?" ग़नी किसी तरह अपने आँसू रोक कर बोला । "तुम लोग उसके पास थे, सब में भाई-भाई की-सी मुहब्बत थी । अगर वह चाहता, तो तुम में से किसी के घर में नहीं छिप सकता था ? उसमें इतनी भी समझदारी नहीं थी ?"

"ऐसे ही है," रक्खे को स्वयं लगा कि उसकी आवाज़ में एक अस्वाभाविक-सी गूंज है । उसके होंठ गाढ़े लार से चिपक गये थे । मूंछों के नीचे से पसीना उसके होंठों पर आ रहा था । उसे माथे पर किसी चीज़ का दबाव महसूस हो रहा था और उसकी रीढ़ की हड्डी सहारा चाह रही थी ।

"पाकिस्तान में तुम लोगों के क्या हाल हैं ?" उसने पूछा । उसके गले की नसों में एक तनाव आ गया था । उसने अँगोछे से बग़लों का पसीना पोंछा और गले का झाग मुंह में खींचकर गली में थूक दिया ।

"क्या हाल बताऊँ, रक्खे," ग़नी दोनों हाथों से छड़ी पर बोझ डालकर झुकता हुआ बोला । "मेरा हाल तो मेरा ख़ुदा ही जानता है । चिराग़ वहाँ साथ होता, तो और बात थी ।. . .मैंने उसे कितना समझाया था कि मेरे साथ चला चल । पर वह ज़िद पर अड़ा रहा कि नया मकान छोड़कर नहीं जाऊँगा—यह अपनी गली है, यहाँ कोई ख़तरा नहीं है । भोले कबूतर ने यह नहीं सोचा कि गली में ख़तरा न हो, पर बाहर से तो ख़तरा आ सकता है ! मकान की रखवाली के लिए चारों ने अपनी जान दे दी !. . . रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था । कहता था कि रक्खे के रहते मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । मगर जब जान पर बन आयी, तो रक्खे के रोके भी न रुकी ।"

रक्खे ने सीधा होने की चेष्टा की क्योंकि उसकी रीढ़ की हड्डी बहुत दर्द कर रही थी । अपनी कमर और जाँघों के जोड़ पर उसे सख़्त दबाव महसूस हो रहा था । पेट की अँतड़ियों के पास से जैसे कोई चीज़

उसकी साँस को रोक रही थी। उसका सारा जिस्म पसीने से भीग गया था और उसके तलुवों में चुनचुनाहट हो रही थी। बीच-बीच में नीली फुलझड़ियाँ-सी ऊपर से उतरतीं और तैरती हुई उसकी आँखों के सामने से निकल जातीं। उसे अपनी ज़बान और होंठों के बीच एक फ़ासला-सा महसूस हो रहा था। उसने अँगोछे से होंठों के कोनों को साफ़ किया। साथ ही उसके मुँह से निकला, "हे प्रभु, तू ही है, तू ही है, तू ही है!"

ग़नी ने देखा कि पहलवान के होंठ सूख रहे हैं और उसकी आँखों के गिर्द दायरे गहरे हो गये हैं। वह उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "जो होना था, हो गया रक्खिया! उसे अब कोई लौटा थोड़े ही सकता है! ख़ुदा नेक की नेकी बनाये रखे और बद की बदी माफ़ करे! मैंने आकर तुम लोगों को देख लिया, सो समझूँगा कि चिराग़ को देख लिया। अल्लाह तुम्हें सेहतमंद रखे!" और वह छड़ी के सहारे उठ खड़ा हुआ। चलते हुए उसने कहा, "अच्छा, रक्खे पहलवान!"

रक्खे के गले से मद्धिम-सी आवाज़ निकली। अँगोछा लिये हुए उसके दोनों हाथ जुड़ गये। ग़नी हसरत-भरी नज़र से आसपास देखता हुआ धीरे-धीरे गली से बाहर चला गया।

ऊपर खिड़कियों में थोड़ी देर चेहमेगोइयाँ चलती रहीं—कि मनोरी ने गली से बाहर निकलकर ज़रूर ग़नी को सब कुछ बता दिया होगा...कि ग़नी के सामने रक्खे का तालू कैसे ख़ुश्क हो गया था!...रक्खा अब किस मुँह से लोगों को मलबे पर गाय बाँधने से रोकेगा?...बेचारी ज़ुबैदा! कितनी अच्छी थी वह!...रक्खे मरदूद का घर न घाट, इसे किसी की माँ-बहन का लिहाज़ था?

थोड़ी देर में स्त्रियाँ घरों से गली में उतर आयीं। बच्चे गली में गुल्ली-डंडा खेलने लगे। दो बारह-तेरह साल की लड़कियाँ किसी बात पर एक दूसरी से गुत्थम-गुत्था हो गयीं।

रक्खा गहरी शाम तक कुएँ पर बैठा खँखारता और चिलम फूँकता रहा। कई लोगों ने वहाँ गुज़रते हुए उससे पूछा, "रक्खे शाह, सुना है आज ग़नी पाकिस्तान से आया था।"

"हाँ, आया था," रक्खे ने हर बार एक ही उत्तर दिया।

"फिर ?"

"फिर कुछ नहीं। चला गया।"

रात होने पर रक्खा रोज़ की तरह गली के बाहर बायीं तरफ़ की दुकान के तख़्ते पर आ बैठा। रोज़ वह रास्ते से गुज़रनेवाले परिचित लोगों को आवाज़ दे-देकर पास बुला लेता था और उन्हें सट्टे के गुर और सेहत के नुस्खे बताता रहता था। मगर उस दिन वह वहाँ बैठा लच्छे को अपनी वैष्णो देवी की उस यात्रा का वर्णन सुनाता रहा जो उसने पंद्रह साल पहले की थी। लच्छे को भेजकर वह गली में आया, तो मलबे के पास लोकू पण्डित की भैंस को देखकर वह आदत के मुताबिक उसे धक्के दे-देकर हटाने लगा—"तत-तत-तत. . .तत-तत. . .!"

भैंस को हटाकर वह सुस्ताने के लिए मलबे के चौखट पर बैठ गया। गली उस समय सुनसान थी। कमेटी की बत्ती न होने से वहाँ शाम से ही अँधेरा हो जाता था। मलबे के नीचे नाली का पानी हल्की आवाज़ करता बह रहा था। रात की ख़ामोशी को काटती हुई कई तरह की हल्की-हल्की आवाज़ें मलबे की मिट्टी में से सुनायी दे रही थी. . .च्यु च्यु च्यु. . .चिक् चिक्-चिक्. . .चिर्र्र्र्-र्र्र्र्-रीरीरीरी-चिर्र्र्र्. . .। एक भटका हुआ कौआ न जाने कहाँ से उड़कर उस चौखट पर आ बैठा। इससे लकड़ी के कई रेशे इधर-उधर छितरा गये। कौए के वहाँ बैठते-न-बैठते मलबे के एक कोने में लेटा हुआ कुत्ता गुर्राकर उठा और ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगा—वऊ-अऊ-वऊ ! कौआ कुछ देर सहमा-सा चौखट पर बैठा रहा, फिर पंख फड़फड़ाता कुएँ के पीपल पर चला गया। कौए के उड़ जाने पर कुत्ता और नीचे उतर आया और पहलवान की तरफ़ मुँह करके भौंकने लगा। पहलवान उसे हटाने के लिए भारी आवाज़ में बोला, "दुर् दुर् दुर् . . .दुरे !"

मगर कुत्ता और पास आकर भौंकने लगा—वऊ-अउ-वउ-वउ-वउ-वउ. . .।

पहलवान ने एक ढेला उठाकर कुत्ते की तरफ़ फेंका। कुत्ता थोड़ा पीछे हट गया, पर उसका भौंकना बंद नहीं हुआ। पहलवान कुत्ते को माँ की गाली देकर वहाँ से उठ खड़ा हुआ और धीरे-धीरे जाकर कुएँ की सिल

पर लेट गया। उसके वहां से हटते ही कुत्ता गली में उतर आया और कुएं की तरफ़ मुंह करके भौंकने लगा। काफ़ी देर भौंकने के बाद जब उसे गली में कोई प्राणी चलता-फिरता नज़र नहीं आया, तो वह एक बार कान झटककर मलबे पर लौट गया और वहां कोने में बैठकर गुर्राने लगा।

दिन के नौ बजे थे और रोज़ की तरह पहलगाम के बाजार में चहल-पहल शुरू हो गयी थी। लोग नाश्ते के बाद अपने-अपने होटलों और टेंटों से तैयार होकर आ गये थे। कई-एक गाड़ियाँ बाजार में एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलकदमी करती दिखायी दे रही थीं। एल्सेशियन कुत्ते को लेकर घूमती एक वृद्ध महिला से लेकर सैनफ्रांसिस्को के तरुण दम्पति तक, और सिंधी डॉक्टर की लड़कियों से लेकर शान्तिनिकेतन के विद्यार्थियों तक हर एक का चलने का अंदाज़ कुछ ऐसा था जैसे वह वहाँ दिग्विजय करने के लिए आया हो। कुछ सुन्दर इकहरे शरीर, दो-चार याद रहने वाले चेहरे, कहीं एक अच्छी मुसकराहट या चुन जाने वाली मुद्रा...वरना सिर्फ़ कपड़े, काले चश्मे और कैमरे! दो-एक चेहरे ऐसे भी दिखायी दे रहे थे जिनकी बदसूरती को शायद घंटों की मेहनत से निखारा गया था। दो अधेड़ व्यक्ति, अपने तरुण मित्रों के समुदाय में गड़े, शोर मचाते हुए लोगों को अपने युवा होने का प्रमाण देने की चेष्टा कर रहे थे। और इस वातावरण में घिरा एक व्यक्ति, जिसकी वेशभूषा से प्रकट था कि वह अमृतसर का लाला है, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ एक तरफ़ खड़ा था। वह बहुत सँवार-सँवारकर चाकू से एक सेब के टुकड़े काट रहा था और उनके हाथों में देता जा रहा था। उन लोगों के पास एक दरी, एक सेबों की टोकरी और एक रोटी का डब्बा रखा था।

पहले पुल की तरफ़ से कुछ घोड़े वाले घोड़ों की लगामें थामे बाजार की तरफ़ आ रहे थे। घोड़ों की उजली सजावट के साथ उनके मैले-फटे कपड़ों की तुलना करने से लगता था कि वे घोड़ों के मालिक नहीं, घोड़े उनके मालिक हैं। वे सब आज बहुत धीरे-धीरे उस तरफ़ आ रहे थे, जो कि उनके स्वभाव के विरुद्ध था। अक्सर उनमें जो जल्दबाजी रहती थी, वह आज नहीं थी।

घोड़ों वालों के बाज़ार में पहुँचते ही बाज़ार की हलचल पहले से कई-

...घोड़ा माँग रही है।"

ज्यादातर लोगों को चन्दनवाड़ी के लिए घोड़े लेने थे। पहलगाम आने वाले सब लोग एक बार चन्दनवाड़ी तक घुड़सवारी अवश्य करते हैं हालांकि चन्दनवाड़ी में ऐसा कोई खास आकर्षण नहीं है। वह अमरनाथ के रास्ते का एक साधारण-सा पड़ाव है। पर क्योंकि वहाँ जाने का रिवाज है, इसलिए लोग वहाँ जाये बिना अपनी पहलगाम की यात्रा पूरी नहीं समझते।

उस लाला ने भी निश्चिन्ततापूर्वक सेब का टुकड़ा चबाते हुए एक घोड़े वाले को आदेश दिया, "तीन घोड़े इधर लाना, भाई! अच्छे बढ़िया घोड़े हों।"

मगर घोड़े वाले ने जवाब में उपेक्षा-सी दिखलाते हुए कहा, "तीन घोड़ों के बारह रुपये होंगे।"

"सब घोड़े तीन-तीन रुपये में जाते हैं," लाला थोड़ा तेज होकर बोला। "हम आज पहली बार नहीं जा रहे हैं।"

यह छोटा-सा झूठ उसकी व्यवहार-बुद्धि ने ही उससे बुलवा दिया, हालांकि कुछ देर पहले जिस तरह वह एक आदमी से चन्दनवाड़ी के बारे में पूछ रहा था, उससे स्पष्ट था कि वह जिन्दगी में पहली बार पहलगाम आया है, और शायद पिछली शाम को ही आया है। उसी आदमी से उसे ...ता चला था कि घोड़े वाले चन्दनवाड़ी के तीन-तीन रुपये लेते हैं।

"चार रुपये सरकारी रेट है," घोड़ेवाले ने घोड़े की जीन ठीक करते ...ए कहा। "चार रुपये से कम में आज कोई घोड़ा नहीं आयेगा।"

"तू जा, अभी पचास घोड़े मिल जायेंगे," लाला ने रूखे स्वर में उसे ...ड़क दिया, और दूसरे घोड़े वाले को आवाज दी।

मगर सब घोड़े वाले उस दिन चार रुपये ही माँग रहे थे। और लोग ...ी इसी बात पर उनसे झगड़ रहे थे। वही घोड़े वाले जो रोज तीन-तीन

रुपये में चन्दनवाड़ी चलने के लिए लोगों की मिन्नतें किया करते थे, और कई बार दो-दो रुपये में भी जाने को तैयार हो जाते थे, आज किसी से सीधे मुँह बात ही नहीं कर रहे थे। लोग आपस में कह रहे थे कि खुद उन्होंने ही घोड़े वालों के दिमाग आसमान पर चढ़ाये हैं—कि घोड़े वाले उन्हें जरूरतमन्द समझकर ही इतना नखरा दिखा रहे हैं। वे सब फ़ैसला कर लें कि कोई घोड़ा नहीं लेगा, तो अभी घोड़े वाले उनकी खुशामद करने लगेंगे, और दो-दो रुपये में चलने को तैयार हो जायेंगे।

"आज बात क्या है?" किसी ने एक घोड़े वाले से पूछा।

"बात कुछ नहीं है, साहब," घोड़े वाले ने उत्तर दिया। "चार रुपये सरकारी रेट है।"

"पहले भी तो सरकारी रेट चार रुपये था। फिर तुम लोग तीन रुपये क्यों लेते थे?"

"यह तो मर्ज़ी की बात है, साहब," एक जवान घोड़े वाला बोला। "पहले मर्ज़ी होती थी, ले लेते थे। आज मर्ज़ी नहीं है, नहीं ले रहे।"

पर धीरे-धीरे इधर-उधर की चेहमेगोइयों से पता चल गया कि कल किसी बाबू ने एक घोड़े वाले को इस बात पर पीट दिया था कि वह चन्दनवाड़ी के तीन की बजाय चार रुपये लेना चाहता था। इसीलिए सब घोड़े वालों ने आज फ़ैसला किया था कि वे चार रुपये से कम में चन्दनवाड़ी नहीं जायेंगे।

"थोड़ी देर इन्तज़ार कीजिये, ये लोग अभी रास्ते पर आ जायेंगे," लाला ने आगे आते हुए कहा। "आज हम इन्हें चार रुपये दे देंगे, तो कल को ये पाँच रुपये माँगेंगे। जो जायज़ बनता है, वही इन्हें देना चाहिए। थोड़ी देर रुकिये, अभी और घोड़े वाले आ जायेंगे।"

खालसा होटल का नौकर आवाज़ दे रहा था कि होटल में अठारह घोड़े चाहिए, इसलिए वे सब घोड़े वाले खालसा होटल की तरफ़ चल दिये। इस पर कुछ लोगों ने तुरन्त परिस्थिति से समझौता कर लिया और चार-चार रुपये में अपने लिए घोड़े ठीक कर लिये। लाला और कुछ दूसरे लोगों ने नाराज़गी ज़ाहिर की कि वे खामखाह अपने को घोड़े वालों के सामने नीचा कर रहे हैं। पर जिन्होंने घोड़े ले लिए थे, वे चुपचाप उन पर सवार होकर

चल दिये। लाला के साथ केवल निर्वचिरापल्ली के विद्यार्थी और एक बंगाली परिवार रह गया। लाला कुछ देर उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाता रहा। फिर अपने परिवार के पास आ गया।

क्योंकि उस जगह काफ़ी बकझक हो चुकी थी, इसलिए वह अपनी पत्नी और बच्चे को साथ लिये पुल की तरफ़ चल दिया। उधर से और बहुत-से घोड़े वाले आ रहे थे। उसने उनमें से भी तीन-चार को रोककर पूछा, पर हर-एक ने चार ही रुपये माँगे। वह कुछ दूर आगे जाकर उधर से लौट पड़ा। उसका बच्चा, जो सामने से आते हुए घोड़ों को उत्सुकता की नज़र से देख रहा था, चलते-चलते ठोकरें खा रहा था। लाला आख़िर मन-ही-मन एक फ़ैसला करके सड़क के बीचों-बीच खड़ा हो गया। पास से गुज़रते तीन घोड़ों को उसने रोक लिया, और एक घोड़ेवाले से कहा कि वह उसकी पत्नी को घोड़े पर बैठने में मदद दे। दूसरे घोड़े पर उसने बच्चे को बिठा दिया और तीसरे की रकाब में पाँव रखकर इन्तज़ार करने लगा कि घोड़े वाला आकर उसके शरीर को ऊपर उछाल दे।

"कहाँ चलना है, लाला?" घोड़े वाले ने उसे सहारा देते हुए पूछ लिया।

"चन्दनवाड़ी," कहता हुआ लाला घोड़े पर जमकर बैठ गया।

"चन्दनवाड़ी के चार-चार रुपये लगेंगे।"

लाला ने घोड़े की पीठ पर से एक विजेता की नज़र चारों तरफ़ डाली, और घोड़े वाले की बात को महत्त्व न देकर कहा, "बताओ, लगाम किस तरह पकड़ते हैं?"

घोड़े वाले ने लगाम उसके हाथ में दे दी। बोला, "साथ आठ-आठ आने आपको बख्शीश के देने होंगे।"

"जो मुनासिब है, दे देंगे," लाला ने कहा। "हम कभी किसी का हक़ नहीं रखते।" उसने लगाम को हल्का-सा झटका दिया। पर उससे घोड़ा आगे चलने की बजाय पीछे की तरफ़ घूम गया।

"लाला, यह ऐसे नहीं चलेगा," घोड़े वाला हँस दिया। "तुम पैसे की बात करो, यह अभी दौड़ने लगेगा।"

"तुमसे कह दिया है न कि ठीक पैसे दे देंगे।"

"चार-चार रुपया भाड़ा और आठ-आठ आना बख्शीश।"

"तीन-तीन रुपया भाड़ा और चार-चार आना . . . !"

"उधर जाओ लाला," घोड़े वाला बीच में ही बोल उठा। "तीन रुपये में आज कोई घोड़ा नहीं जायेगा।"

"कैसे नहीं जायेगा ?" लाला गुस्से के साथ बोला। "जब रोज जाता है, तो आज भी जायेगा।"

"नहीं जायेगा साहब, आज हर्गिज नहीं जायेगा।"

"तो हम भी घोड़े से नहीं उतरेंगे। खड़े रहो जितनी देर खड़े रहना है!" और पंजाबी गालियाँ मिलाकर वह ऐसी हिन्दी बोलने लगा जिसमें केवल बाप-की-मान था, कल्पना का स्पर्श तक नहीं था। तभी न जाने क्या हुआ कि उसकी पत्नी का घोड़ा बिदककर सरपट दौड़ उठा। उस बेचारी ने सँभलने की बहुत कोशिश की, पर कुछ गज जाते-न-जाते उसकी एक ही टाँग जीन पर रह गयी, और वह सिर के बल गिरने को हो गयी। घोड़े वाले ने दौड़कर वक्त पर घोड़े को रोक लिया।

लाला ऐसी हालत में था कि वह बिना घोड़े वाले की मदद के उतर भी नहीं सकता था। उसने एक पैर रकाब से निकाल लिया था, पर उसे जमीन तक पहुँचाने की कोशिश में दूसरा पैर उलझ गया था। घोड़े वाले ने उसे सहारा देकर उतार दिया। तब तक उसकी पत्नी भी किसी तरह सँभल कर उतर गयी थी। लाला ने अब खुद ही बच्चे को भी उतारा और उसी भाषा में फिर अपने उद्गार प्रकट करने लगा। घोड़े वाले अपनी जबान में उसे जवाब देते हुए वहाँ से चले गये क्योंकि दूर से कोई उन्हें हाथ के इशारे से बुला रहा था।

बंगाली परिवार और तिरुचिरापल्ली के विद्यार्थी भी अब घोड़ों पर सवार होकर आ रहे थे। और भी कितने ही ग्रुप चन्दनवाड़ी की तरफ़ जा रहे थे। कुछ युवतियाँ और युवक तेजी से घोड़े दौड़ाते पास से निकल गये। बच्चा हैरान-सा खड़ा उन्हें दूर जाते देखता रहा।

लाला की पत्नी ने उससे कहा कि यदि चलना हो, तो उन्हें भी और लोगों की तरह चुपचाप चार-चार रुपये में घोड़े ले लेने चाहिए। लाला ने जैसे बहुत बड़ा समझौता करते हुए उसकी बात मान ली, और एक घोड़े वाले को आवाज दी कि वह उनके लिए तीन घोड़े ले आये।

मगर घोड़े वाले ने दूर से ही कहा, "नहीं साहब, घोड़ा खाली नहीं है।"

पास से निकलता एक और घोड़े वाला भी यही कहकर चला गया। तीसरे ने यह जवाब देना भी मुनासिब नहीं समझा। आखिर एक घोड़े वाले ने रुककर पूछ लिया, "चार रुपया भाड़ा और एक रुपया बख्शीश मिलेगा ?"

"भाड़ा हम तुम्हें रेट के मुताबिक देंगे," लाला खिसियाने स्वर में बोला। "पर बख्शीश हमारी मर्ज़ी पर है।"

"नहीं साहब," घोड़े वाले ने कहा। "बख्शीश की बात भी पहले तय होनी चाहिए। उधर एक और साहब घोड़ा माँग रहा है। वह एक रुपया बख्शीश देगा।"

इससे पहले कि लाला कुछ निश्चय कर पाता, एक और घोड़े वाले ने उस घोड़े वाले को बुला लिया। वह एक यूरोपियन परिवार के लिए सात घोड़े इकट्ठे कर रहा था। लाला ने पत्नी और बच्चों को वहीं छोड़कर पूरे बाज़ार का एक चक्कर लगाया। पर सभी घोड़े तब तक जा चुके थे। तभी अचानक उसकी नज़र एक घोड़े वाले पर पड़ी जो घोड़ा लिये बलब की सड़क से बाज़ार की तरफ आ रहा था। वह रुककर उसकी राह देखने लगा। घोड़ा और घोड़े वाला बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। लगता था जैसे दोनों बीमार हों। पास पहुँचने पर लाला ने घोड़े वाले से पूछा कि वह चन्दनवाड़ी का क्या लेगा।

"चार रुपया," घोड़े वाले ने खाँसते हुए उत्तर दिया।

उसने साथ बख्शीश की माँग नहीं की, इससे लाला के चेहरे पर खुशी की हल्की-सी लहर दौड़ गयी। उसने घोड़े वाले से कहा कि वह जाकर उनके लिए दो घोड़े और ले आये।

"और घोड़ा आप देख लीजिये, मेरे पास एक ही घोड़ा है।" घोड़े वाला उसी तरह खाँसता रहा। "और लेना हो तो बताइये, नहीं तो मैं उधर से एक मेम साहब के बच्चों को घुमाने ले जाऊँगा।"

"तू मेरे साथ रह, अभी दो घोड़े और मिल जायेंगे," लाला ने कहा और उसे साथ लिये हुए वहाँ आ गया जहाँ उसकी पत्नी खड़ी थी। वहाँ आकर उसने गर्व के साथ पत्नी को बतलाया कि अब बिना बख्शीश के

आत्म-आघात करने के पीछे छिप गये हैं, और दो घण्टा हो गया है थोड़ी देर में इनके भी आस में छिपने लगे। उसके बाद वह पानी और बर्फ की मार लिये पांवों की तलाश में आकाश के चक्कर काटने लगा। बच्चा चोंटी का दबा उदास था, पानी गिरने की चोट की मार में लिये था और वह एक दरी बगल में दबाये था। चारों ओर उसके पीछे-पीछे पांड़े की तलाश करके ताकता हुआ चल रहा था। वे बहुत देर आकाश में इसी तरह ऊपर-से-नीचे और नीचे-से-ऊपर चक्कर काटते रहे, पर कहीं उन्हें एक भी और खाली पेड़ नजर नहीं आया।

रोज़गार

वह दुबली-सी लड़की साधना रेस्तराँ के बाहर टैक्सी से उतरी, और अन्दर जाकर कोने की मेज के पास बैठ गयी।

साधना रेस्तराँ, निःसन्देह, किसी कवि-मस्तिष्क की उपज है। वहाँ के किवाड़ पुरानी आबनूस की लकड़ी के हैं, जिनका निर्माण-काल सत्रहवीं शताब्दी है। अन्दर खाने-बैठने की मेजों के पीछे बुक-स्टॉल है। दायीं तरफ एक प्लेटफार्म है, जहाँ कोई बड़ी पार्टी हो तो डिनर की मेजें लगा दी जाती हैं, वरना चार-पाँच शतरंज की मेजें बिछी रहती हैं। सफेद बालों वाले कई बुजुर्ग वहाँ बैठे मोहरों की साधना में लीन रहते हैं। रेस्तराँ में कोई जोर से बात करे, या कहकहा लगाये, तो सहसा उन बुजुर्गों की भौंहें तन जाती हैं, और चेहरे इस तरह सिकुड़ जाते हैं, जैसे उन्हें सख्त चोट पहुँचायी गई हो। यूँ प्रायः रेस्तराँ में सर्द खामोशी छायी रहती है, और केवल छुरी-काँटों और मोहरों के चलने की आवाज ही सुनाई देती है। वहाँ बैठकर खेलने वालों को मौन-साधना का कुछ ऐसा अभ्यास है, कि बाजी का अन्तिम मोहरा चलते हुए वे मुँह से मात तक नहीं कहते।

वह लड़की मेज पर कुहनियाँ रखे, सीधी नजर से प्लेटफार्म की तरफ देखती रही। उसकी नजर में एक जड़ता थी, जैसे उसके लिए काठ के मोहरों और उन्हें चलाने वाले हाथों में विशेष अन्तर न हो। बैरा कॉफी और सैंडविच लाकर उसके सामने रख गया तो वह सैंडविच के जरा-जरा-से टुकड़े दाँतों से काटकर धीरे-धीरे चबाने लगी ऐसे, जैसे उस काम में काफी मेहनत पड़ती हो। प्याली में कॉफी उँडेल कर वह देर तक उसे चम्मच से हिलाती रही, फिर हल्के-हल्के घूँट भरने लगी। उसकी आँखें प्लेटफार्म से हटतीं, तो दीवार पर स्थिर हो रहतीं। बीच-बीच में वह सतर्क नजर से इधर-उधर देख लेती। कॉफी समाप्त करके उसने आँख के इशारे से बिल मँगवाया, और सवा रुपया तश्तरी में डालकर उठ खड़ी हुई।

फुटपाथ पर आकर वह भटकी हुई मुद्रा में कुछ क्षण इधर-उधर

देखती रही। मरे-मुरझाये चेहरों का एक हुजूम फ़्लोरा फ़ाउंटेन की तरफ़ जा रहा था, इतना उस तरफ़ से आ रहा था। स्त्री और पुरुष के भेद के बग़ैर प्रायः एक-से चेहरे—हैट, कोट, कॉलर, स्कर्ट और फ्रॉक। बस पकड़ने वालों के लम्बे-लम्बे क्यू धीरे-धीरे आगे को सरक रहे थे। घण्टियों की टन्-टन् और इंजनों की घरघराहट के बीच कई-कई आकृतियाँ जल्दी-जल्दी सड़क पार कर रही थीं। कई एक पहिये, एक-दूसरे के पीछे घूमते लगातार सड़क पर फिसलते जाते थे। लड़की ने दो-एक बार होंठों पर ज़बान फेरी और एम्बार्ड्स होटल की तरफ़ मुड़ गई।

एम्बार्ड्स होटल और साधना रेस्तराँ के बीच सिर्फ़ एक गली का फ़ासला है, जो अक्सर वीरान पड़ी रहती है। गली में घुसते ही लिफ़्टमैन रहमान ड्योढ़ी में कुरसी डाले बैठा नज़र आता है। लिफ़्ट हफ़्ते में चार दिन ख़राब रहती है, इसलिए ज़्यादातर उसे अपनी मूँछों पर हाथ फेरते रहने के सिवा कोई काम नहीं होता। लड़की ड्योढ़ी के पास पहुँची, तो रहमान उसे सलाम करने के लिए नहीं उठा। मूँछ के कोने को उँगली और अँगूठे के बीच मसलते हुए उसने उसे तिरछी आँख से देखा, और वह ज़ीने का पहला मोड़ मुड़ गई, तो पहले की तरह गली के शून्य को गम्भीर दृष्टि से देखने लगा।

लड़की अँधेरे में रास्ता टटोलकर क़दम रखती हुई सीढ़ियाँ चढ़ती गई। रूबी एण्ड कम्पनी, दिनशा ब्रदर्स और मोटर पार्ट्स प्राइवेट लिमिटेड के दफ़्तरों के पास से गुज़रकर वह चौथी मंज़िल पर पहुँची। उसकी आँखें फ़ीरोज़ी शीशे में जड़े मैले अक्षरों से टकराईं—राइट्स ऑफ़ एडमिशन रिज़र्व्ड। पल-भर साँस लेकर उसने अन्दर पोर्टिको में क़दम रखा, जिसे एक टूटा सोफ़ा सेट, एक पैवंद-लगी दरी, एक तिपाई और कुछ कुरसियाँ लगाकर मिसेज़ एडवर्ड्स ने ड्राइंगरूम का नाम दे रखा था। लड़की के अन्दर पहुँचते ही वहाँ बैठकर अख़बार पढ़ते तीन-चार लोगों की आँखें उसकी तरफ़ उठ गईं। दो-एक की भौंहों पर सवालिया निशान उभर आये।

लड़की ने छः नम्बर कमरे का दरवाज़ा खटखटाया। कुछ क्षणों में दरवाज़ा खुला और वह अन्दर चली गई। दरवाज़ा बन्द हो गया।

ड्राइंगरूम में कानाफूसी होने लगी।

"कौन है यह ?"
"उसकी बहन है।"
"उस हरामी की...?"
"हां, उसकी बड़ी बहन है।"
"सगी बहन ?"
"सुना यही है कि सगी बहन है।"
"और इनके मां-बाप ?"
"मां-बाप का पता नहीं है। यह बहन ही कभी-कभी यहां आती है।"
"वैसे यह रहती कहां है ?"
"यह भी ठीक पता नहीं।...सुना है यह टैक्सी है...।"
कुछ होंठों पर मुसकराहटें फैल गईं। आवाजें और धीमी हो गईं।
"यूं तो काफी दुबली-सी है।"
"पर कट अच्छा है।"
"वैसे उम्र भी ज्यादा नहीं है। बाईस-तेईस साल की होगी।"
"अट्ठाईस-तीस का तो वही लगता है।"
"पर वह अभी इक्कीस का भी नहीं है। अन्दर से खोखला हो चुका है, इसलिए बड़ा लगता है।"
"वह तो कुछ करता-धरता नहीं। दिन-भर यहीं पड़ा रहता है।"
"साले की बहन जो कमाती है।"
इस पर मुसकराहटें और लम्बी हो गईं।
थोड़ी देर में छः नम्बर का दरवाजा खुला और वह लड़की और उसका भाई साथ-साथ बाहर निकले। लड़की ने मिसेज एडवर्ड्स के कमरे का दरवाजा खटखटाया। मिसेज एडवर्ड्स, जिसके पतले चेहरे की सब लकीरें ठोड़ी की तरफ जाती हैं, माथे पर दो स्थायी बल डाले बाहर निकली।
"यू, मिस दारूवाला...?"
"येस् मिसेज एडवर्ड्स।"
मिसेज एडवर्ड्स के जबड़े सख्त हो गये। उसने दोनों को अपने कमरे में दाखिल करके दरवाजा बन्द कर लिया।

"मैं न कहती हूँ इस बार तुम अपने भाई को साथ ही लेती जाओ," उसने [illegible] "यह और कहीं रहेगा, तो एक दिन में ही [illegible] जायेगी।"

लड़की सामने की कुर्सी पर बैठ गई। उसका भाई खड़ा रहा।

"मैं तुम्हारा बिल देने आयी हूँ," उसने कहा।

"तुम इसका आज तक का बिल जमा कर दो, और इसे यहाँ से ले जाओ।"

लड़की की आँखों में नमी उभर आई। उसका भाई मुसकराता रहा।

"इसे शर्म आ सकती है!" मिसेज़ एडवर्ड्स तेज़ आँखों से उसे देखती हुई बोलीं। "अपनी करतूतों पर इसे शरम नहीं आती।"

"मैं पैसे देकर यहाँ रहता हूँ, मुफ्त में नहीं रहता।" लड़के का चेहरा अकड़ गया, और गरदन कुछ बाहर को फैल आई।

"तू पैसे देता है?" मिसेज़ एडवर्ड्स रजिस्टर खोलकर गुस्से में उसके पन्ने उलटने लगीं। "कमाकर पैसे देता, तो तेरे होश-हवास दुरुस्त रहते। तूने तो जिन्दगी में एक ही काम सीखा है, और वह है खाना और पड़े रहना।"

"जैसे तुम्हारे यहाँ का खाना किसी से खाया जा सकता है!"

मिसेज़ एडवर्ड्स की आँखों से चिनगारियाँ फटने लगीं।

"तो कौन कहता है तुझसे खाने के लिए? क्यों नहीं आज ही छोड़कर चला जाता?"

वह रसीद-बुक में लगाने के लिए कार्बन ढूँढ़ने लगी, पर अपनी उत्तेजना में कार्बन उसे मिला नहीं। कार्बन रजिस्टर के नीचे दब गया था। लड़की ने वह निकालकर उसके सामने कर दिया।

"इसकी किसी बात का बुरा क्यों मानती हो मिसेज़ एडवर्ड्स?" उसने मुलायम स्वर में कहा, "तुम्हें पता है, यह बीमार है।"

"यह बीमार है—यह?" मिसेज़ एडवर्ड्स पेंसिल को दबा-दबाकर रसीद में संख्याएँ भरने लगी। "मैं तुमसे ठीक कहती हूँ मिस दारूवाला, इसकी बीमारी-बीमारी सब बहाना है। यह घोड़े की तरह तन्दुरुस्त है, और घोड़े की तरह ही खाता है।"

"जो कुछ तुम्हारे यहाँ बनता है, वह घोड़ा ही खा सकता है, आदमी नहीं।"

मिसेज एडवर्ड्‌स बहुत अधिक उत्तेजित होने के बाद हताशा की एक साँस लेकर ठंडी पड़ गई। लड़की ने नोट गिनकर उसके सामने रख दिये। उसने रसीद फाड़ कर दे दी।

"सुन रही हो इसकी बात?" वह फरियादी की तरह बोली। "अगर यह तुम्हारा भाई न हो, तो मैं इसे एक दिन भी यहाँ न रहने दूँ। इसी वक़्त इसका बोरिया-बिस्तर सड़क पर पहुँचवा दूँ।"

उसने नोट उठा लिये और दो बार गिनकर जेब में डाल लिये।

"इसे सुबह एक प्याली दूध और दे दिया करो," लड़की ने उठते हुए कहा। "मैं उसके पैसे अलग-से दे दिया करूँगी।"

मिसेज एडवर्ड्‌स ने तिरस्कार-भरी नजर से उसके भाई की तरफ देखा।

"न जाने किस बदक़िस्मती में परमात्मा ने तुझे ऐसी बहन दी है, जमशेद दारूवाला!" वह बोली। "तू क़तई ऐसी बहन का भाई होने के लायक नहीं है।"

जमशेद दारूवाला ने कंधा मोड़कर नाटकीय ढंग से अपना रुख बदल लिया।

"मुझसे दोपहर के वक़्त रोज ठंडा गोश्त नहीं खाया जाता," वह बहन की आँखों में देखता हुआ बोला। "इससे कह दो कि मेरे लिए यह उस वक़्त तरी वाला गोश्त...।"

"मैं तरी वाला गोश्त नहीं दे सकती!" मिसेज एडवर्ड्‌स ने जोर से रजिस्टर बन्द कर दिया। "मैंने एक बार नहीं, दस बार तुमसे कह दिया है, और अब रोज इस बारे में झक-झक नहीं करना चाहती। पाँच रुपये आठ आने रोज में बम्बई का जो दूसरा होटल तुझे कमरा और चार वक़्त का खाना दे सकता हो, वहाँ चला जा। इसे यह चाहिए, यह चाहिए। मैंने कह दिया है मैं एफ़ोर्ड नहीं कर सकती—तरी वाला गोश्त...!"

"और यह मेरे आमलेट में टमाटर नहीं डालती।"

"यही बहुत है कि मैं तुझे रोज दो अण्डे का आमलेट दे देती हूँ। इससे

[illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो।"

[illegible] [illegible] हुए, और मिसेज एडवर्ड्स के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कुर्सी का पीठ से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भाग आता। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वह [illegible] पर बिखर गया।

"[illegible] [illegible] का [illegible] कैसा है?" किसी ने उससे पूछा।

"[illegible] [illegible] रहा है," उसने [illegible] [illegible] कहा। "डैम!"

मिसेज एडवर्ड्स [illegible] कुर्सी पर [illegible] देर तक बड़बड़ाती रही।

[illegible] [illegible] [illegible] की बात थी। उसके बाद नवम्बर के अन्त तक [illegible] [illegible] नहीं आयी। [illegible] [illegible] आठवें-दसवें रोज आकर [illegible] [illegible] [illegible] जाती थी, और उसका [illegible] चुका जाती थी। इतना [illegible] [illegible] पड़ जाने से [illegible] के साथ-साथ मिसेज एडवर्ड्स के गुस्से का [illegible] भी [illegible] की हद को पार करने लगा। वह रोज जमशेद से पूछती कि उसे अपनी बहन की कुछ खबर है या नहीं। जमशेद एक ही जवाब देता कि उसकी बहन [illegible] में चली गयी है, और जल्द ही वह भी वहाँ जाने वाला है। मिसेज एडवर्ड्स कुढ़ती हुई अपने दरवाजे तक आती, और ड्राइंग रूम में बैठे लोगों के सामने अपना रोना रोने लगती। कहती कि वह औरत है, इसीलिए लोग उसे इतना तंग कर लेते हैं। उसका पति जिन्दा होता तो किसकी मजाल थी जो उससे इस तरह का व्यवहार करता!

मिसेज एडवर्ड्स और उसके परिवार के अलावा जमशेद दारूवाला ही उस होटल की एक निश्चित इकाई था। कोई बैरा या खानसामा भी वहाँ साल भर से ज्यादा नहीं टिकता था, जबकि जमशेद को वहाँ रहते डेढ़ साल से ऊपर हो गया था। वह भी पहले दो-तीन होटलों में हंगामा करने के बाद वहाँ आया था। वहाँ से भी दूसरे-तीसरे महीने उसे चले जाना पड़ता, पर मिसेज एडवर्ड्स को एक खास वजह से उसकी बहन का लिहाज रखना पड़ता था। जब-तब पाँचवीं मंजिल के किसी कमरे के लिए उसकी जरूरत पड़ जाती थी, और वह हरबंससिंह टैक्सी-ड्राइवर को भेजकर

उसे बुलवा लिया करती थी।

जमशेद दारूवाला पहले दिन से ही अपनी बीमारी की लम्बी-चौड़ी तफ़सील के साथ वहाँ आया था। उसके फेफड़े कमज़ोर थे, उसे जोड़ का दर्द था, और जब-तब उसका ब्लड-प्रेशर बढ़ जाता था। दो साल घर से ग़ायब रहकर वह ये सब बीमारियाँ साथ ले आया था, और यह डॉक्टरी हिदायत थी कि कुछ दिन उसे पूरा आराम करना चाहिए। बहन के साथ उसके फ़्लैट में रहने में दोनों को असुविधा थी, इसलिए उसके रहने का प्रबन्ध बहन ने हॉस्टल में कर दिया था।

जमशेद सवेरे देर से उठता। जब और लोग तैयार होकर बाहर जा रहे होते, तो वह स्लीपरों पर घिसटता हुआ बाथ-रूम की तरफ़ जाता। जब खाने का समय होता, तो वह नहाने के लिए गरम पानी की माँग करता। लगभग अढ़ाई बजे, जब बैरे छुट्टी कर जाते, तो वह डाइनिंग रूम में आकर खाने के लिए चिल्लाने लगता। उस समय प्रायः मिसेज़ एडवर्ड्स को उससे झड़प हो जाती थी। मिसेज़ एडवर्ड्स इस क़ानूनी नुक़्ते को लेकर लड़ती कि बाहर लगे बोर्ड के अनुसार खाने का वक़्त बारह से दो बजे तक है—उसके बाद उसे गरम खाना नहीं दिया जा सकता। जमशेद की नज़र में मिसेज़ एडवर्ड्स को ऐसा क़ानून बनाने का कोई अधिकार ही नहीं था। एक बोर्डर की हैसियत से उसे यह हक़ हासिल था कि वह जिस समय चाहे, गरम खाने की माँग करे। मिसेज़ एडवर्ड्स बड़बड़ाती हुई ख़ुद उसका खाना गरम करके दे देती थी। और जो भी बना होता, उसे लेकर फिर उनमें बहस हो जाती थी।

"ख़ूब!" जमशेद प्लेट पर नज़र डालते ही कहता। "आज का क्या मीनू है, मिसेज़ एडवर्ड्स? स्लाइस, काले पत्थर के टुकड़े और समुन्दर का पानी! सभी सेहत-अफ़्ज़ा चीज़ें हैं!"

"परमात्मा के घर से अपनी अम्मी को बुला ला, जो तेरे लिए इससे अच्छी चीज़ें बना दिया करे।"

"कुछ दिन और यहाँ का खाना खाऊँगा, तो मैं आप ही उसके पास पहुँच जाऊँगा।"

और मिसेज़ एडवर्ड्स रोज़ किसी-न-किसी के सामने घोषणा करती

कि [illegible] अन्दर-अन्दर [illegible] रहती थी।

[illegible] में रहने वाले लोगों [illegible] इस कमरे में जाकर [illegible] थी। परिचय के [illegible], और उसमें [illegible] घंटे-आधे घंटे [illegible] इतिहास में उसने किसी का कभी कुछ बिगाड़ा नहीं था—सिवाय एक बात के, जो मार-पीट की नौबत आ जाने से [illegible] उसकी नाक से अन्त कर दिया था, और [illegible] कर लिया था। नीले या पीले रंग की टी-शर्ट पहने वह ड्राइंग रूम के सोफे पर बैठा सीटी बजाता रहता। किसी भी जवान लड़की के पास से गुजरने पर उसकी सीटी की आवाज ऊँची हो जाती। उसका एक हाथ माथे की लटों से खेलता रहता, और दूसरा तरह-तरह की नाटकीय मुद्राओं में अभिनय करता रहता। कोई उससे उसका परिचय पूछता, तो वह माथे की लट को पीछे झटक कर अदा के साथ कहता, "मैं एक आर्टिस्ट हूँ।"

फिर वह यह स्पष्ट करता कि अभी वह बीमार है—ठीक होने पर फ़ैसला करेगा कि अपने किस आर्ट को डिवेलप करे। शौक़ उसे सभी कलाओं का था, जिनका थोड़ा-बहुत प्रदर्शन वह वहां करता रहता था। कभी कार्टून बनाता, और कभी अभिनय के साथ फ़िल्मी धुनें गाया करता। बहुत दिनों से कोई उसे ड्रिंक देने या सिनेमा दिखाने वाला नहीं मिला था, इसलिए आजकल उस पर निराशा का भूत सवार रहता था। वह प्रायः बग़लों में हाथ दबाये खिड़की के पास खड़ा सड़क से गुजरती बसों और ट्रामों को देखता रहता। उसकी दाढ़ी तीन-तीन दिन की बढ़ी रहती। मिसेज़ एडवर्ड्स की छोटी लड़की रोज़ा जब भी उसके पास से गुजरती, वह उसके गाल मसल देता। उसका नहाने-खाने का वक़्त अब पहले से भी अनिश्चित हो गया था। कभी कोई उसकी बहन के बारे में पूछ लेता, तो वह दाँत भींचकर कहता, "अपने किसी यार के साथ भाग गयी होगी. . .कुतिया!"

कभी वह उतरकर नीचे सड़क पर चला जाता और मुंह उठाये बस-स्टाप के पास खड़ा रहता। घरघराहट, घंटियों की टन्-टन् और हिस्नु-

हिस्सु-हिस्सु की आवाज़...वह अड़ नज़र से पास से गुज़रती दुनिया को देखता रहता। अँधेरा होने पर कई छायाएँ फुटपाथ के खम्भों के साथ सटी हुई नज़र आतीं—टाँगें सीधी, जिस्म तने हुए और आँखें इधर-उधर देखती हुईं। सामने रीगल की बत्तियाँ चमकती दिखायी देतीं। बस-स्टैंड के अँधेरे में खड़ी कोई आकृति व्यस्तता प्रकट करती हुई बार-बार घड़ी की तरफ़ देखती। टैक्सियों के दायरे के पास खड़ी कोई आकृति वातावरण के प्रति उदासीनता प्रकट करती हुई बार-बार गले का पसीना पोंछती, या मुँह के आगे रूमाल रखकर ज़रा-ज़रा खाँसती। वह आँखें गड़ाकर उन सब को देखता। पैट्रोल-पम्प के पास खड़े छोकरे, रूखे बालों पर हाथ फेरते हुए, एक दूसरे को आँखों से इशारे करते। थोड़ी देर में वे आकृतियाँ टैक्सियों में दाख़िल हो जातीं, और टैक्सियाँ दायें या बायें को मुड़कर भीड़ में खो जातीं। उसकी आँखें उधर से हटतीं, तो रीगल की बत्तियों से चुँधिया जातीं—इन्ग्रिड बर्गमेन और ग्रैगरी पेक एक अभिजात भावातिरेक की मुद्रा में...जैनिफ़र जोन्स, विभोर होकर क्रॉस के सामने झुकी हुई...।

तभी वह चौंककर किसी बस या ट्राम की खिड़की की तरफ़ देखता, जो आँखें स्थिर होने से पहले ही सामने से ओझल हो जाती।

दिन में एकाध बार वह बहन के फ्लैट पर भी हो आता। वहाँ हर समय उसे ताला लगा मिलता। हरबंससिंह टैक्सी-ड्राइवर ने बताया था कि वह जब भी वहाँ गया है, उसने भी ताला ही लगा देखा है। छः-सात हफ़्ते से किसी और टैक्सी-ड्राइवर को भी वह नहीं मिली थी। लगता यही था कि किसी के साथ बम्बई से बाहर चली गयी होगी, या शायद...।

जमशेद रात को देर-देर तक मैरीन ड्राइव पर या इण्डिया गेट के पास घूमता रहता। नैरीमन पॉइंट की सीढ़ियों पर वह तब तक बैठा रहता, जब तक समुद्र का पानी उसकी टाँगों तक न बढ़ आता। रात की रोशनी में चमकती सुनसान सड़कों पर से लौटते हुए उसे लगता कि वह चल नहीं रहा, किसी तरह अपने को घसीटकर आगे ले जा रहा है। वह देर से वापस आकर उस बिल्डिंग का दरवाज़ा खटखटाता, तो पहले उसे चौकीदार की बड़बड़ाहट सुननी पड़ती। फिर ज़ीने में बिखरकर सोये व्यक्तियों के ऊपर से लाँघना पड़ता। कमरा खोलते हुए साथ के किसी

कमरे से खाँसी की आवाज़ सुनायी देती। वह पलंग पर लेट जाता, तो खाँसी की आवाज़ आस-पास के सारे वातावरण को छा लेती। वह कई-कई बार तकिये की स्थिति बदलता, या पैताने होकर सोने की कोशिश करता। खाँसी की आवाज़ बंद होती, तो कहीं से घड़ी की टिक्-टिक् सुनायी देने लगती। . . .सुबह जब उसकी आँख खुलती, तो बारह-साढ़े बारह बज चुके होते। कमरे से निकलते ही मिसेज़ एडवर्ड्स से उसका टकराव हो जाता। उसे देखते ही मिसेज़ एडवर्ड्स की त्योरियाँ चढ़ जातीं, और वह किसी और की तरफ़ देख कर कहती, "लो, साहब उठ खड़ा हुआ है!"

वह दाँतों को ब्रश से रगड़ता हुआ उसके पास से निकलकर चला जाता।

उधर से लौटकर आता, तो भी मिसेज़ एडवर्ड्स कोई वैसी ही बात कह देती "अब दो बजे साहब नाश्ता करेगा।"

"दो बजे नहीं, तीन बजे करेगा साहब नाश्ता!" एक दिन जमशेद बुरी तरह भड़क उठा। "तुम्हारे पेट में क्यों तकलीफ़ होती है?"

मिसेज़ एडवर्ड्स तमककर खड़ी हो गयी। "मुझे तकलीफ़ होती है क्योंकि मेरा पैसा लगता है। तेरा बाप यहाँ मेरे लिए अपनी जायदाद नहीं छोड़ गया है।"

"बक नहीं, हरामज़ादी।"

"क्याऽऽ?" मिसेज़ एडवर्ड्स गुस्से में सब कुछ भूल गयी। "तू शरम से डूब नहीं मरता? बहन के पाप की कमाई से रोटी खाता है, और मेरे सामने आँखें तरेरता है! थू है तेरे जैसे आदमी पर! थू. . .थू. . . .!"

जमशेद के हाथ ऐसे हिले जैसे अभी उसे गले से पकड़ लेगा। पर उसके घुटने नहीं हिले, और वह जकड़ा-सा अपनी जगह खड़ा रहा। मिसेज़ एडवर्ड्स पाँच नम्बर के सेठ के सामने जाकर रोने लगी, "सुना तुमने सेठजी? यह आदमी मुझे हरामज़ादी कह रहा है! मेरे होटल में रहकर, मेरी रोटी खाकर, मुझे ऐसी गाली देते इसे शरम नहीं आयी। बेशरम, बेहया! मेरा मर्द आज ज़िन्दा होता तो देखती कि कौन मुझे इस तरह गाली देता है!"

[illegible] दाँत भींचे तेज़ी से मुड़ा, और उसने कमरे में जाकर धम् से

दरवाज़ा बन्द कर लिया। कुछ देर बाद पतलून-कमीज़ पहने वह उसी तेज़ी के साथ निकला, और किवाड़ ज़ोर से पीछे को धकेलकर ज़ीने से नीचे चला गया।

उसके बाद वह फिर लौटकर नहीं आया।

रात के ग्यारह बजे तक मिसेज़ एडवर्ड्स इंतज़ार करती रही। उसके बाद उसने कमरे को ताला लगवा दिया। तीन दिन वह ड्राइंग रूम में हर एक के सामने रोती-कलपती रही। चौथी रात उसने दो आदमियों के सामने ताला खोला और सामान की जाँच की। कपड़ों वाला ट्रंक खुला था। मुचड़ा हुआ नाइट-सूट चारपाई पर पड़ा था। मेज़ पर दवाई की कुछ शीशियाँ और एक खाली पोस्टकार्ड रखा था। एक टॉनिक की शीशी अभी खोली नहीं गयी थी। फ़र्श पर टूटी हुई काली बाथरूम चप्पल, दो-एक बकल्स और पुराने बदबूदार मोज़े पड़े थे। ज़ंग खाये शीशे के पास टूटी हुई कंघी और बटनुमा-सा शेव का सामान रखा था। तकिये के नीचे एक फटी हुई किताब थी—"हऊ टु विन फ्रेंड्स एण्ड इन्फ्लुएन्स पीपल!"

ये सब चीज़ें बैरे से उठवाकर उसने अपने कमरे के एक कोने में रखवा दीं। सारा समय वह दूसरों को सुनाकर कहती रही, "यह कूड़ा मेरे लिए छोड़ गया है! मैं इसे हाथ से छूऊँगी भी नहीं। मेरा सात हफ़्ते का बिल है! लोग मेरे अहसान का मुझे यह बदला देते हैं . !"

अगले दिन छः नम्बर कमरे में नया किरायेदार आ गया।

इसके अठारह-बीस दिन बाद एक शाम को, जब दो-एक व्यक्ति ड्राइंग रूम में चाय पी रहे थे, वह दुबली लड़की ज़ीने से आकर क्षणभर के लिए ड्यौढ़ी में रुकी, फिर रूमाल से माथे का पसीना पोंछती हुई अन्दर आ गयी। ड्राइंग रूम में बैठे व्यक्तियों की आँखों में फिर सवालिया सकेत पैदा हुए। एक ने कंधे झटक दिये। दूसरा मुँह बनाकर चाय पीने में व्यस्त हो रहा।

लड़की ने ६ नम्बर कमरे का दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा खुलने पर वह थोड़ा अचकचा गयी।

"जमशेद दारूवाला यहाँ नहीं है?" उसने पूछा।

"उस कमरे में आजकल दूसरा सोता है," उसे जवाब मिला। "होटल का मैनेजमेंट बदल गया है।"

लड़की ने मिसेज़ एडवर्ड्स का दरवाज़ा खटखटाया। मिसेज़ एडवर्ड्स उसे देखकर अचकचा गई।

"यू मिस आर नाथ...?"

"येस् मिसेज़ एडवर्ड्स।"

"आओ, आओ!" उसने उसे अन्दर दाखिल करते हुए कहा। "लेकिन वह...तुम्हारा भाई...वह कहाँ है?"

"वह यहाँ नहीं है?"

"यहाँ?" मिसेज़ एडवर्ड्स के गले से एक अजीब-सी आवाज़ पैदा हुई। "यहाँ से तो वह कई दिन हुए भाग गया है। वट ए मैन! बैठो, कुरसी लो।"

लड़की कुरसी की बाँहें पकड़कर बैठ गयी। मेज पर हिसाब का रजिस्टर और रसीद की कापियाँ करीने से रखी थीं। टाइम-पीस के काले डायल के आगे सफ़ेद सुइयाँ चमक रही थीं। हर चीज जैसे घड़ी की आवाज के साथ टिक्-टिक् कर रही थी। लड़की ने होंठों पर जबान फेरी। मिसेज एडवर्ड्स ने अपनी कुरसी का रुख बदल लिया।

"कितने दिन हुए उसे यहाँ से गये?" लड़की के गले में कुछ खराश आ गयी थी।

"आज बाईस-तेईस दिन हो गये।"

लड़की सूनी आँखों से मिसेज एडवर्ड्स के चेहरे को देखती रही—जैसे वह चेहरा न होकर कोई बेजान चीज़ हो। उसके माथे पर पसीने की बूंदें झलक आयीं।

"तुम इतने दिन कहाँ थीं?" मिसेज़ एडवर्ड्स ने पूछा। "मैं रोज हरवंससिंह से पता कराती रही हूँ। वह कहता था...।"

"मैं अस्पताल में थी," लड़की कठिनाई से शब्दों को जबान पर ला पायी।

"अस्पताल में?" मिसेज़ एडवर्ड्स के चेहरे पर थोड़ी कोमलता आ गयी। "बीमार थीं?"

लड़की ने रुमाल से माथे का पसीना पोंछ लिया। "मेरा ऑपरेशन हुआ था।"

"ऑपरेशन? किस चीज़ का ऑपरेशन?"

लड़की की आँखें ऊपर उठीं, और झुक गयीं। मिसेज़ एडवर्ड्स की आँखें उसके चेहरे को टटोलती रहीं।

"तुम्हारा मतलब है तुमने...?"

लड़की की आँखें फिर उठीं और झुक गयीं।

"च्‌च्‌ च्‌च्‌...!" मिसेज़ एडवर्ड्स की त्योरियाँ गहरी हो गयीं।

लड़की की आँखें कई क्षण उठी रहीं, और उसके होंठ काँपते रहे। मिसेज़ एडवर्ड्स ने एक लम्बी साँस ली। लड़की कुछ क्षण अपने में खोयी रही। फिर सहसा उठ खड़ी हुई।

"तुम्हारे भाई का सामान पड़ा है," मिसेज़ एडवर्ड्स ने कोने की तरफ़ इशारा कर दिया।

लड़की कई क्षण कोने में पड़ी चीज़ों को देखती रही।]

"इन्हें बेचकर पैसे हिसाब में जमा कर लेना," उसने कहा।

"लेकिन," मिसेज़ एडवर्ड्स भी बिल-बुक को सहलाती हुई खड़ी हो गयी। "इनमें बिकने वाली चीज़ तो कोई भी नहीं है। उसका सात हफ़्ते तीन दिन का बिल बाक़ी है।"

"जितना बाक़ी है, मैं दे जाऊँगी।"

"यही समझो कि पूरा ही बाक़ी है।"

"मैं दे जाऊँगी।"

और जल्दी से दरवाज़ा खोलकर वह ज़ीने की तरफ़ बढ़ गयी। फ़ुटपाथ पर आकर वह सड़क पर से जाती धुँधली रेखाओं को देखती रही। फिर साधना रेस्तराँ के अन्दर चली गयी। सामने प्लेटफ़ार्म पर कई जगह शतरंज की बाज़ियाँ चल रही थीं। गम्भीर चेहरे, गम्भीर आँखें, और मशीनों की तरह मोहरों पर पड़ते हाथ...। लड़की ने चेहरा सख़्त किये हुए दो-एक बार आँखों पर रुमाल फेरा, फिर अच्छी तरह आँखों को रुमाल से दबा लिया। मोहरों को उठाते हाथ क्षण-भर के लिए रुके, और गम्भीर चेहरों की रेखाएँ कुछ और गहरी हो गयीं। बैरा पास आया, तो लड़की ने

धुंधली आँखों से नीचे की तरफ़ देखा, और सहसा उठकर रेस्तराँ से बाहर आ गयी। पटरी के निचले पत्थरों पर अस्थिर क़दम रखती हुई वह बस-स्टॉप के पास आकर खड़ी हो गयी।

भीड़ से लदी बसें और ट्रामें म्यूज़ियम की तरफ़ जा रही थीं, या उधर से इस तरफ़ आ रही थीं। टैक्सियों के दायरे में कितनी ही टैक्सियाँ जमा थीं। आर्ट गैलरी के बाहर बहुत भीड़ थी। शायद वहाँ कोई प्रदर्शनी चल रही थी। बस पकड़ने वालों के क्यू धीरे-धीरे आगे को सरक रहे थे। काफ़ी देर तक जड़-सी अपनी जगह पर खड़ी रही, और इधर-से-उधर और उधर-से-इधर देखती रही।

जानवर और जानवर

स्कूल की नयी मेट्रन का नाम अनिता मुखर्जी था और उसकी आँखें बहुत अच्छी थीं। पर वह आंट सैली की जगह आयी थी, इसलिए पहले दिन बैचलर्स डाइनिंग रूम में किसी ने उससे खुलकर बात नहीं की।

उसने जॉन से बात करने की कोशिश की, तो वह 'हूँ हाँ' में उत्तर देकर टालता रहा। मणि नानावती को वह अपनी चायदानी में से चाय देने लगी, तो उसने हल्का-सा धन्यवाद देकर मना कर दिया। पीटर ने अपना चेहरा ऐसे गम्भीर बनाये रखा जैसे उसे बात करने की आदत ही न हो। किसी तरफ से लिफ्ट न मिलने पर वह भी चुप हो गयी और जल्दी से खाना खाकर उठ गयी।

"अब मेरी समझ में आ रहा है कि पादरी ने सैली को क्यों निकाल दिया," वह चली गयी, तो जॉन ने अपनी भूरी आँखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किये हुए कहा।

पीटर की आँखें नानावती से मिल गयीं। नानावती दूसरी तरफ देखने लगी।

वैसे उन में से कोई नहीं जानता था कि आंट सैली को फादर फिशर ने क्यों निकाल दिया। उसके जाने के दिन से ही जॉन मुँह-ही-मुँह बड़बड़ाकर अपना असन्तोष प्रकट करता रहता था। पीटर भी उसके साथ दबे-दबे कुछ लेता था।

"चलकर एक दिन सब लोग पादरी से बात क्यों नहीं करते?" एक बार हकीम ने तेज होकर कहा।

जॉन ने पीटर को आँख मारी और वे दोनों चुप रहे। दूसरे दिन सुबह पादरी के सिर दर्द की खबर पाकर हकीम उसकी मिजाजपुर्सी के लिए गया तो जॉन पीटर से बोला, "ए, देखा? पहुँच गया न उसके तलुवे सूँघने? सन ऑव् ए गन! हमें उल्लू बनाता था।"

आंट सैली के चले जाने से बैचलर्स डाइनिंग रूम का वातावरण बहुत

[illegible] हो गया था। और [illegible] कि वातावरण में बहुत [illegible]-सा [illegible] था—[illegible] और [illegible] आंटी के बीच अ[illegible] [illegible] परिवार [illegible]-सा बन जाता था। वह [illegible] आती :

'पीटर के लिए आज [illegible] बना है, या वह मेरा ही मज़ाक़ [illegible] ?''

या—

''...ओ हो हो! मुझे नहीं पता था कि आज [illegible] इस तरह ग़ज़ब ढा रही है। नहीं तो मैं भी ज़रा सज-सँवरकर आती।''

[illegible] सफ़ेद बालों पर बँधे लाल या नीले फ़ीते की तरफ़ संकेत करके कहता, "आंटी, यह फ़ीता बाँधकर तो तुम बिलकुल दुलहिन जैसी लगती हो!''

"अच्छा, दुलहिन जैसी लगती हूँ? तो कौन करेगा मुझसे शादी? तुम करोगे?'' और उसकी आँखें मिच जातीं, होंठ फैल जाते और गले से छलछलाती हँसी का स्वर सुनायी देता।

एक बार पीटर ने कहा, "आंटी, पाल कह रहा था कि वह आज-कल में तुमसे ब्याह का प्रस्ताव करने वाला है।''

आंटी ने चेहरा ज़रा तिरछा करके आँखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किये हुए उत्तर दिया, "तो मुझे और क्या चाहिए? मुझे एक साथ पति भी मिल जायगा और बेटा भी।''

फिर वही हँसी, जैसे बहते पानी के वेग में छोटे-छोटे पत्थर फिसलते चले जायें।

आंट सैली के चले जाने से अकेले लोगों का वह परिवार काफ़ी उखड़ गया था। कुछ दिन पहले इसी तरह मीराशी चला गया था। उसके बाद पाल की छुट्टी कर दी गयी थी। मीराशी तो ख़ैर बिगड़ैल आदमी था, मगर पाल को बैचलर्स डाइनिंग रूम के बैचलर्स—जिनमें दो स्त्रियाँ भी सम्मिलित थीं—बहुत चाहते थे। हालाँकि जॉन को पाल का अंग्रेज़ी फ़िल्मों के बटलर की तरह अकड़कर चलना पसन्द नहीं था और उन दोनों में प्रायः आपस में झड़प हो जाती थी, फिर भी उसकी पीठ पीछे वह उसकी तारीफ़

ही रहता था। जिस दिन पाल गया, उस दिन जॉन खिड़की के पास बैठा सिर हिलाकर पीटर से कहता रहा, "अच्छा हुआ जो यह लड़का यहाँ से चला गया। अभी तो यह बाहर जाकर कुछ बन भी जायेगा, वरना यहाँ रहकर इसका क्या बनता था? तुम भी जवान आदमी हो, तुम यहाँ किस लिए पड़े हो?"

और पीटर घड़ी को चाबी देता हुआ चुपचाप दीवार की तरफ़ देखता रहा।

पाल और मीराजी के निकाले जाने की वजह का तो खैर सब को पता था। मीराजी का अपराध बिल्कुल सीधा था। उसने फादर क्रिस्टर के माली से [illegible] किया था। पाल का अपराध दूसरी तरह का था। उसने आवारा नस्ल का एक हिन्दुस्तानी कुत्ता पाल लिया था जिसे वह हर समय अपने साथ रखता था। हालांकि कुत्ते में कोई खासियत नहीं थी—बहुत साधारण-सी सूरत, पीला बादामी रंग और लम्बूतरा-सा उसका क़द था—फिर भी क्योंकि पाल ने उसे पाल लिया था, इसलिए वह उसे बहुत लाड़ से रखता था। उसका नाम उसने 'बेबी' रख रखा था और कई बार उसे साथ में लिये खाना खाने आ जाता था। जल्दी ही बेबी बैचलर्स डाइनिंग रूम में खाना खाने वाले सब लोगों का बेबी बन गया—एक मिस नाना-वती को छोड़कर जो उसकी सूरत देखते ही घबरा जाती थी। घबराहट से उसके चेहरे का रंग सुर्ख हो जाता और उसका सारा थरथराता शरीर काबू में न रहता। एक बार बेबी उसके हाथ में हड्डी देखकर उसके घुटने पर चढ़ने की कोशिश करने लगा तो वह घबराकर कुर्सी पर खड़ी हो गयी और दोनों हाथ हवा में झटकती हुई चिल्लाने लगी, "ओई ओई हिश्! गो अवे! प्लीज़ पाल, टेक हिम अवे! प्लीज़...!"

पाल [illegible] का [illegible] मुँह के पास रोककर [illegible] के साथ मुस्करा-ता और बेबी को डाँटकर बोला, "चल इधर बेबी! इस तरह खानदान को बदनाम करता है?"

मगर बेबी को हड्डी का कुछ ऐसा शौक़ था कि वह डाँट सुनकर भी नहीं टला। वह नानावती की कुर्सी पर चढ़कर उसके जिस्म के सहारे ऊपर पहुँचने की कोशिश करने लगा। इस अफ़रातफ़री में नानावती कुर्सी

से छिटकने में जा रही थी कि पाल ने जल्दी से उठकर उसे बगल से पकड़कर नीचे उतार दिया। फिर उसने बेबी को दो चपत लगायीं और उसे कान से पकड़ता हुआ अपनी सीट के पास ले आया। बेबी पाल की टाँगों के आसपास मँडराने लगा।

"मेरा सारा स्वाद खराब कर दिया!" नानावती हाँफती हुई रूमाल से अपना ब्लाउज साफ करने लगी। उसके ब्लाउज पर एकाध जगह बेबी का मुँह छू गया था।

बेबी अब पाल के पाँवों से अपनी नाक रगड़ रहा था। पाल ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "नॉटी बास्टर्ड! इसमें भी क्या शरारत कि इंसान एटिकेट तक भूल जाए!"

जॉन पीटर की तरफ देखकर मुसकराया। नानावती भड़क उठी। "देखो पाल, मुझे इस तरह का मजाक कतई पसन्द नहीं।" गुस्से से उसका पूरा शरीर तमतमा गया था। अगर वह और शब्द बोलती तो साथ रो देती।

मगर उसे गम्भीर देखकर भी पाल गम्भीर नहीं हुआ। बोला, "मुझे खुद ऐसा मजाक पसन्द नहीं, मादाम! मैं इसकी हरकत के लिए बहुत शर्मिन्दा हूँ!" और उसके निचले होंठ पर हल्की-सी मुस्कराहट आ गई।

नानावती क्षण-भर रुँधे हुए आवेश के साथ पाल को देखती रही। फिर अपना नेपकिन मेज पर पटककर तेजी से कमरे से चली गई। उसके जाते ही जॉन ने अपनी भूरी आँखें फैलाकर सिर हिलाया और कहा, "आज तुम्हारे साथ कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। वह अब सीधी उस शुतुरमुर्ग के पास शिकायत करने जायगी....कुतिया!"

मगर नानावती ने कोई शिकायत नहीं की। बल्कि दूसरे दिन सुबह उसने पाल से अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँग ली। जॉन को अपनी भविष्यवाणी के ग़लत निकलने का खेद तो हुआ, पर इससे नानावती के प्रति उसका व्यवहार पहले से बदल गया। उसने उसकी अनुपस्थिति में उसके लिए वेश्यावाचक शब्दों का प्रयोग बन्द कर दिया। यहाँ तक कि एक दिन वह एटकिन्सन के साथ इस सम्बन्ध में विचार करता रहा कि इतनी अच्छी और मेहनती लड़की को उसके पति ने घर से क्यों निकाल रखा है।

नानावती ने भी उसके बाद बेबी को देखते ही 'ओई ओई हिश्' करना बन्द कर दिया। गाहे-बगाहे वह उसे देखकर मुस्करा भी देती। एक बार तो उसने बेबी की पीठ पर हाथ भी फेर दिया, हालांकि ऐसा करते हुए वह सिर से पाँव तक सिहर गई।

बैचलर्स डाइनिंग रूम में पाल के ज़ोर-ज़ोर के कहकहे रात को दूर तक सुनाई देते। बेबी को लेकर नानावती से तरह-तरह के मज़ाक किये जाते। मज़ाक सुनकर जॉन की भूरी आँखों में चमक आ जाती और वह सिर हिलाता हुआ मुस्कराता रहता।

मगर एक दिन सुबह बैचलर्स डाइनिंग रूम में सुना गया कि रात को फ़ादर फिशर ने बेबी को गोली मार दी है।

जॉन अपनी चुँधियाई आँखों को मेज़ पर स्थिर किये चुपचाप आमलेट खाता रहा। नानावती का छुरी वाला हाथ ज़रा-ज़रा काँपने लगा। एक बार सहमी नज़र से जॉन और पीटर को देखकर वह अपनी नज़रें प्लेट पर गड़ाये रही। पीटर स्लाइस का टुकड़ा काटने में इस तरह व्यस्त हो रहा जैसे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहा हो।

"पाल अभी नहीं आया, ए?" जॉन ने किरपू से पूछा।

किरपू ने नमकदानी पीटर के पास से हटाकर जॉन के सामने रख दी।

"नहीं।"

"वह आज आयगा? हिः!" जॉन ने आमलेट का बड़ा-सा टुकड़ा काटकर मुँह में भर लिया।

"बेज़बान जानवर को इस तरह मारने से....मैं कहता हूँ....मैं कहता हूँ....," आमलेट जॉन के गले में अटक गया।

किरपू चटनी की बोतल रखने के बहाने जॉन के कान के पास फुसफुसाया, "पादरी आ रहा है!"

सबकी नज़रें प्लेटों पर जम गईं। पादरी लबादा पहने, बाइबल लिये, गिर्जे की तरफ़ जा रहा था। वह खिड़की के पास से गुज़रा तो तीनों अपनी-अपनी कुर्सी से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मॉर्निंग, फ़ादर!"

"गुड मॉर्निंग माई सन !"

"आज कितना सुहाना दिन है !"

"परमात्मा का शुक्र करना चाहिए !"

पादरी मर्फी जब आगे निकल गया, तो जॉन बोला, "यह अपने को पादरी कहता है ! जैसे परमात्मा ने संसार-भर का चरित्र सुधारने के लिए इसको ठेका दे दिया और पाजी.........हरामजादा !"

नानावती सिहर गई ।

"ऐसी गाली नहीं देनी चाहिए," वह दबे हुए और शंकित स्वर में बोली ।

"तुम इसे गाली कहती हो ?" जॉन आवेश के साथ बोला । "मैं कहता हूँ इसमें जरा भी गाली नहीं है । तुम्हें इसकी करतूतों का पता नहीं है ? यह पादरी है ?"

नानावती का चेहरा फीका पड़ गया । उसने शंकित नजर से इधर-उधर देखा, पर चुप रही । जॉन के चौड़े माथे पर कई लकीरें खिंच गई थीं । वह बोतल से इस तरह चटनी उँडेलने लगा, जैसे उसी पर अपना सारा गुस्सा निकाल लेना चाहता हो ।

पीटर सारा समय खिड़की से बाहर देखता रहा ।

डिंग डांग ! डिंग डांग ! गिरजे की घंटियां बजने लगीं । नानावती जल्दी से नेपकिन से मुंह पोंछकर उठ खड़ी हुई और पल-भर दुविधा में रहकर बाहर चली गयी ।

"चुहिया ! कितना डरती है, ए ?" जॉन बोला ।

मिसेज मर्फ़ी एटकिन्सन के साथ बात करती हुई खिड़की के पास से निकलकर चली गई । गिरजे की घंटियां लगातार बज रही थीं—डिंग डांग ! डिंग डांग ! डिंग डांग !

जॉन जल्दी-जल्दी चाय के घूंट भरने लगा । जल्दी में चाय की कुछ बूंदें उसके गाउन पर गिर गयीं ।

"गाश् !" वह प्याली रखकर रूमाल से गाउन साफ़ करने लगा ।

"गिरजे नहीं चल रहे ?" पीटर ने उठते हुए पूछा ।

जॉन ने जल्दी-जल्दी दो-तीन घूंट भरे और बाकी चाय छोड़कर उठ

था। उनके दरवाजे से बाहर निकलते ही किरपू और ईसरसिंह में
; मक्खन के लिए छीना-झपटी होने लगी, जिसमें एक प्याली गिर-
: गयी। हकीम और बैरी को आते देखकर ईसरसिंह जल्दी से पैंट्री
। गया और किरपू कपड़े से मेज साफ करने लगा।
कीम कन्धे झुकाकर चलता हुआ बैरी को रात की घटना सुना रहा
डाईनिंग रूम के पास आकर उसका स्वर और धीमा हो गया—
; बेबी को डॉली के साथ देखते ही पादरी को एकदम गुस्सा आ गया
ह अन्दर जाकर अपनी राइफल निकाल लाया। एक ही फायर में
उसे चित कर दिया। डॉली कुछ देर विटर-विटर पादरी को देखती
फिर बाड़ के पीछे भाग गयी। बाद में सुना है पादरी ने उसे गरम
। से नहलवाया और डॉक्टर को बुलाकर उसे इंजेक्शन भी
वाये..!"

"कहाँ पादरी की बिस्कुट और सैंडविच खाकर पली हुई कुतिया और
बेचारा बेबी!" बैरी मुस्कराया।

"मगर उस बेचारे को क्या पता था?"

वे दोनों हँस दिये।

"बेबी को मालूम होता कि यह कुतिया कैनेडा से आयी है और
की कीमत तीन सौ रुपया है, तो शायद वह..!"

और वे दोनों फिर हँस दिये।

"यह तो था कि कार पादरी ने देख लिया, पर इससे पहले अगर....?"
बैरी ने हकीम को आँख मारी। वह चुप कर गया। बाड़ के मोड़ के
र जॉन और पीटर खड़े थे। पीटर अपने जूते का फीता फिर से बाँध रहा
।

"गुड मॉर्निंग, पीटर!"

"गुड मॉर्निंग, बैरी!"

"आज बहुत चुस्त लग रहे हो। बाल आज ही कटाये हैं?"

"नहीं, दो-तीन दिन हो गए।"

"बहुत अच्छे कटे हैं।"

"शुक्रिया!"

हफ़्ते के अन्दर अपना क्वार्टर खाली करके चला जाय।

"यह पादरी नहीं, शैतान है," जॉन मुँह में बड़बड़ाया।

पीटर को उस दिन शहर में काम निकल आया, इसलिए वह रात को देर से लौटा। हर्मन और बैरो गोल्फ के मैदानों की खोज में व्यस्त रहे। नानावती को हल्का-सा बुखार हो आया। पाल को चलते वक़्त सिर्फ़ जॉन ही अपने कमरे में मिला। वह अपनी खिड़की में रखे गमलों को ठीक कर रहा था।

"जा रहे हो?" उसने पाल से पूछा।

"हाँ, तुमसे गुड बाई कहने आया हूँ।"

जॉन गमलों को छोड़कर अपनी चारपाई पर आ बैठा।

"मैं जवान होता, तो मैं भी तुम्हारे साथ चला चलता," उसने कहा। "मगर मुझे यहाँ से निकलकर पता नहीं कब्र की राह भी मिलेगी या नहीं। मेरी हड्डियों में दमखम होता, तो तुम देखते..."

पाल ने मुस्कराकर उसका हाथ दबाया और उसके पास से चल दिया।

"विश यू बेस्ट आफ़ लक।"

"थैंक यू।"

पाल के चले जाने के बाद आंट सैली ने बैचलर्स डाइनिंग रूम में आना बन्द कर दिया और कई दिन खाना अपने क्वार्टर में ही मँगवाती रही। जॉन और पीटर भी अलग-अलग वक़्त पर आते, जिससे बहुत कम उन में मुलाकात हो पाती। नानावती अब पहले से भी सहमी हुई आती और जल्दी-जल्दी खाना खाकर उठ जाती। फ़ादर फ़िशर ने उसे पाल वाला क्वार्टर दे दिया था, इसलिए वह अपने को अपराधिनी-सी महसूस करती थी। जॉन ने उसके बारे में अपनी राय फिर बदल ली थी।

मगर धीरे-धीरे स्थिति फिर पुरानी सतह पर आने लगी थी। बैचलर्स डाइनिंग रूम में फिर क़हक़हे और बहस-मुबाहिसे सुनायी देने लगे थे, जब एक रात सुना गया कि आंट सैली को भी नोटिस मिल गया है।

"सैली को?" जॉन के होंठ खुले रह गए। "किस बात पर?"

"बात का पता नहीं है," पीटर सूप में चम्मच चलाता रहा।

जॉन का चेहरा गम्भीर हो गया। वह मक्खन की टिकिया खोलता

हुआ बोला, "मुझे लगता है कि इसके बाद अब मेरी बारी आयगी। मुझे पता है कि उसकी आँखों में कौन-कौन खटकता है। सैली का कसूर यह था कि वह रोज उसकी हाज़िरी नहीं देती थी और न ही वह..." और वह मानावती की तरफ़ देखकर चुप कर गया। पीटर कुछ कहने को हुआ, मगर बाहर से हकीम को आते देखकर चुपचाप नैपकिन से होंठ पोंछने लगा।

हकीम के आने पर कई क्षण चुप्पी छायी रही। फिरपू हकीम के सामने प्लेट और छुरी-काँटे रख गया।

"तुम्हारे क्वार्टर में नये पर्दे बहुत अच्छे लगे हैं," जॉन हकीम से बोला।

"तुम्हें पसन्द हैं ?"

"बहुत।"

"शुक्रिया !"

"मेरा ख्याल है चॉप्स में नमक ज़्यादा है।"

"अच्छा ?"

"लेकिन पुडिंग अच्छा है।"

खाना खाकर जॉन और पीटर लॉन में टहलते रहे। और सैली के क्वार्टर को जाने वाले मोड़ के पास रुककर जॉन ने पूछा, "सैली से मिलने चलोगे ?"

"क्यों ?"

"उस हरामी ने हमें इस वक्त जाते देख लिया तो...।"

"तो कल सुबह न चलें ?"

"हाँ, इस वक्त देर भी हो गयी है।"

"बेचारी सैली !"

"इस पादरी जैसा ज़ालिम आदमी मैंने आज तक नहीं देखा। फ़ौज में बड़े-बड़े सख्त अफ़सर थे, मगर ऐसा आदमी कोई नहीं था।"

पीटर जंगले के पास घास पर बैठ गया।

"मुझे फिर से फ़ौज की ज़िन्दगी मिल जाय तो मैं एक दिन भी यहाँ न रहूँ..."

घास पर बैठकर जॉन पीटर को अपनी फ़ौज की जिन्दगी के वही किस्से सुनाने लगा जो वह पहले भी कई बार सुना चुका था।

"पूरी-पूरी बोतल ए! रोज़ रात को रम की एक पूरी बोतल मैं पी जाता था। मेरा एक साथी था जो पास के गांव से दो लड़कियों को ले आया करता था।...कभी-कभी हम रात को निकलकर उनके गांव चले जाते थे। अफ़सर लोग देखते थे मगर कुछ कह नहीं सकते थे। वे खुद भी तो यही कुछ करते थे। वह जिन्दगी जिन्दगी थी। यह भी कोई जिन्दगी है, ए?"

मगर पीटर उसकी बात न सुनकर बिना आवाज पैदा किये, मुंह-ही मुंह, एक गीत गुनगुना रहा था।

"वैसे दिन फिर से मिल जायें, तो कुछ नहीं चाहिए, ए?"

ऊपर देवदार की टहनियां हिल रही थीं। हवा से जंगल सांय-सांय कर रहा था। हॉस्टल की तरफ़ से आती पगडंडी पर पैरों की आवाज़ सुनकर जॉन थोड़ा चौंक गया।

"कोई आ रहा है, ए?"

पीटर सिर उठाकर जंगले से नीचे देखने लगा।

पैरों की आहट के साथ सीटी की आवाज ऊपर आती गई।

"वैरो है!"

"यह भी एक ही हरामजादा है।"

पीटर ने उसका हाथ दबा दिया।

"अभी क्वार्टर में नहीं गये टैफ़ी?" वैरो ने अंधेरे से निकलकर सामने आते हुए पूछा

"नहीं, यहां बैठकर जरा हवा ले रहे हैं।"

"आज हवा काफ़ी ठण्डी है। पन्द्रह-बीस दिन में बर्फ़ पड़ने लगेगी।"

जॉन जंगले का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, गुड नाइट पीटर! गुड नाइट वैरो!"

"गुड नाइट!"

कुछ रास्ता पीटर और वैरो साथ-साथ चलते रहे। वैरो चलते-चलते बोला, "जॉन अब काफ़ी सठिया गया है, क्यों? इसे अब रिटायर हो जाना

चाहिए।"

"हाँ-आँ!" पीटर के शरीर में एक सिहरन भर गई।

"मगर यह तो यहीं अपनी कब्र बनायगा, नहीं?"

पीटर ने मुंह तक आई गाली होंठों में दबा ली।

बैरो का क्वार्टर आ गया।

"अच्छा, गुड नाइट!"

"गुड नाइट!"

सुबह नाश्ते के वक्त जॉन ने पीटर से पूछा, "सैली चली गयी, ए?"

"पता नहीं," पीटर बोला, "मेरा खयाल है अभी नहीं गयी।"

"वह आ रही है!" नानावती नेपकिन से मुंह पोंछकर उसे हाथ में मसलने लगी। जॉन और पीटर की आँखें झुक गयी।

आंट सैली का रिक्शा डाइनिंग रूम के दरवाजे के पास आकर रुक गया। वह कन्धे पर झोला लटकाये उतरकर डाइनिंग रूम में आ गयी।

"गुड मॉर्निंग एवरीबडी!" उसने दहलीज लाँघते ही हाथ हिलाया।

"गुड मॉर्निंग सैली!" जॉन ने भूरी आँखें उसके चेहरे पर स्थिर किये हुए भारी आवाज में कहा। जो वह मुंह से नहीं कह सका, वह उसने अपनी गहरी नजर से कह देने की चेष्टा की।

"बस आज ही जा रही हो।" नानावती ने डरे-सहमे हुए स्वर में पूछा और एक बार दायें-बायें देख लिया। आंट सैली ने आँखें झपकाते हुए मुस्कराकर सिर हिला दिया।

"मैं सुबह मिलने आ रहा था," पीटर बोला। "मगर तैयार होने-होने में देर हो गयी। मेरा खयाल था कि तुम शायद शाम को जा रही हो...।"

आंट सैली ने धीरे से उसका कन्धा थपथपा दिया और उसी तरह मुस्कराते हुए कहा, "मैं जानती हूँ मेरे बच्चे! मैं चाहती हूँ कि तुम खुश रहो।"

"आंटी, कभी-कभार खत लिख दिया करना," पीटर ने उसका मुरझाया हुआ नरम हाथ अपने मजबूत हाथ में लेकर हिलाया। आंट सैली की आँखें डबडबा आयी और उसने उन पर रूमाल रख लिया।

"अच्छा गुड बाई!" कहकर वह दहलीज पार करके रिक्शा की

तरफ़ चली गयी ।

"गुड नाइट मेरी !" जॉन ने पीछे से कहा ।

"गुड नाइट जॉनी !"

"गुड नाइट !"

और मेरी ने रिक्शा में बैठकर उनकी तरफ़ हाथ हिलाया । मजदूर रिक्शा खींचने लगे ।

कुछ देर बाद नानावती ने कहा, "हिम्मू, एक बटर स्लाइस ।"

जॉन पीछे की तरफ़ देखकर बोला, "मुझे चाय का थोड़ा गर्म पानी और दे दो ।"

पीटर जैम के डिब्बे में से जैम निकालने लगा ।

जिस दिन अनिता आयी, उसी शाम से आकाश में सलेटी बादल घिरने लगे । रात को हल्की-हल्की बरफ़ भी पड़ गयी । अगले दिन शाम तक बादल और गहरे हो गए । पीटर सेनानी गांव तक घूमकर वापस आ रहा था, जब अनिता उसे ऊपर की पगडंडी पर टहलती दिखायी दे गयी । वह उस ठण्ड में भी साड़ी के ऊपर सिर्फ़ एक शाल लिये थी । पीटर को देखकर वह मुस्कराई । पीटर ने उसकी मुस्कराहट का उत्तर अभिवादन से दिया ।

"घूमने जा रही हो ?" उसने पूछा ।

"नहीं, यूँ ही जरा टहलने के लिए निकल आयी थी ।"

"तुम्हें ठण्ड नहीं लग रही ?"

"ठण्ड तो है ही, मगर क्वार्टर में बन्द होकर बैठने को मन नहीं हुआ।" उसने शाल से अपनी बाँहें भी ढाँप लीं ।

"तुम तो ऐसे घूम रही हो जैसे मई का महीना हो ।"

"मेरे लिए मई और नवम्बर दोनों बराबर हैं । मेरे पास ऊनी कपड़े हैं ही नहीं ।" वह फिसलन पर से सँभलती हुई पगडंडी से उतरकर उसके पास आ गयी ।

ऊनी कपड़े तो तुमने पादरी के डिनर की रात के लिए सँभालकर रख रखे होंगे । तब तक सरदी से बीमार न पड़ जाना ।" पीटर ने मजाक के अन्दाज में अपना निचला होंठ सिकोड़ लिया ।

"सच, मेरे पास इस शाल के सिवा और कोई ऊनी कपड़ा है ही नहीं,"

अनिता उसके साथ-साथ चलती हुई बोली। "सच पूछो तो यह भी प्रेज़ेंट
का है। हमें ऊपर गरम कपड़ों की जरूरत ही नहीं पड़ती।"

"तो परसों तक एक बढ़िया-सा कोट सिला लो। परसों फादर
का डिनर है।"

"परसों तक ? ..ओह !" और वह मीठी-सी हँसी हँस दी।

"क्यों ? एक दिन में यहाँ अच्छे-से-अच्छा कोट सिल जायगा।"

"मेरे पास इतने पैसे होते तो मैं यहाँ नौकरी करने ही क्यों आती ?
तुम्हें पता है मैं नौ सौ मील से यहाँ आयी हूँ ... य ..."

"पीटर—या सिर्फ विकी ...।"

"मैं अपने घर में अकेली कमाने वाली हूँ। मेरी माँ पहले ट्यूशन किया
करती थी, पर अब उसकी आँखें बहुत कमजोर हो गयी हैं। मेरा छोटा भाई
अभी पढ़ता है। उसके एम० एस-सी० करने तक मुझे नौकरी करनी है।"

पीटर ने रुककर एक सिगरेट सुलगा लिया। बरफ के हल्के-हल्के गाले
पड़ने लगे थे। उसने आकाश की तरफ देखा। बादल बहुत गहरा था।

"आज काफी बरफ पड़ेगी," उसने कोट के कॉलर ऊँचे उठाते हुए
कहा। "चलो तुम्हें तुम्हारे क्वार्टर तक छोड़ आऊँ। ...तुम सी कॉटेज
में ही हो न ?"

"हाँ। ... चलो मैं तुम्हें वहाँ चाय की प्याली बनाकर पिलाऊँगी।"

"इस मौसम में चाय मिल जाय, तो और क्या चाहिए ?"

वे सी कॉटेज को जाने वाली पगडंडी पर उतरने लगे। कुहरा घना
हो जाने से रास्ता दस कदम से आगे दिखाई नहीं दे रहा था। अनिता एक
जगह पत्थर से ठोकर खा गई।

"चोट लगी ?"

"नहीं।"

"मेरे कंधे का सहारा ले लो।"

अनिता ने बराबर आकर उसके कंधे का सहारा ले लिया। जब वे
सी कॉटेज के बरामदे में पहुँचे, तो बरफ़ के बड़े-बड़े गाले गिरने लगे थे।
घाटी में जहाँ तक आँख जाती थी बादल-ही-बादल भरा था। एक बिल्ली
दरवाज़े से सटकर काँप रही थी। अनिता ने दरवाज़ा खोला, तो वह म्याऊँ

कमरे के अन्दर घुस गयी ।

दरवाज़ा खुलने पर पीटर ने उसके सामान पर एक सरसरी नज़र डाली । मामूली फ़र्नीचर के अलावा उसे एक टीन का ट्रंक और दो-चार कपड़े भी दिखायी दिये । मेज़ पर एक साफ़ टेबल-क्लॉथ रखा था और उसके पास ही एक युवक का फ़ोटोग्राफ़ था । पीटर चारपाई पर बैठ गया । अनिता स्टोव जलाने लगी ।

चारपाई पर एक पुस्तक और एक आधा लिखा पत्र पड़ा था । पीटर ने पत्र ज़रा हटाकर रख दिया और पुस्तक उठा ली । पुस्तक पत्र-लेखन के सम्बन्ध में थी और उसमें हर तरह के पत्र दिये हुए थे । पीटर उसके पन्ने पलटने लगा ।

अनिता ने स्टोव जलाकर केतली चढ़ा दी । फिर उसने बाहर देखकर कहा, "बरफ़ पहले से तेज़ पड़ने लगी है ।"

पीटर ने देखा कि बरामदे के बाहर ज़मीन पर सफ़ेदी की हल्की तह बिछ गयी है । उसने सिगरेट का टुकड़ा बाहर फेंका, तो वह धुन्ध में जाते ही बुझ गया ।

"आज सारी रात बरफ़ पड़ती रहेगी," उसने कहा ।

अनिता स्टोव पर हाथ सेंकने लगी ।

बरामदे में पैरों की आहट सुनकर पीटर बाहर निकल आया । जॉन भारी कदमों से चलता आ रहा था ।

"ए पीटर !"

"हलो टैफ़ी ! . . . इस वक़्त बर्फ़ में कैसे निकल पड़े ?"

"तुम्हारे क्वार्टर में गया था । तुम वहाँ नहीं मिले तो सोचा शायद यहाँ मिल जाओ ।" और वह मुसकरा दिया ।

"वैसे घूमने के लिए मौसम अच्छा है !" पीटर ने कहा ।

वे दोनों कमरे में आ गये । अनिता प्यालियाँ धो रही थी । एक प्याली उसके हाथ से गिरकर टूट गयी ।

"ओह !"

"प्याली टूट गयी ?"

"हाँ, दो थीं, उनमें से भी एक टूट गयी ।"

"कोई बात नहीं। सॉसर तो हैं, उनसे प्यालियों का काम चल जायगा।"

पीटर फिर चारपाई पर बैठ गया। जॉन मेज पर रखे फोटोग्राफ के पास चला गया।

"फ़िआंसे—ए ?"

अनिता ने मुस्कराकर सिर हिला दिया।

"यह चिट्ठी भी उसी को लिखी जा रही थी ?"

जॉन ने चारपाई पर रखे पत्र की तरफ संकेत किया। पीटर पुस्तक का वह पृष्ठ पढ़ने लगा जिस पर से वह पत्र नकल किया जा रहा था।

जॉन स्टोव के पास जा खड़ा हुआ और अनिता के शाल की तारीफ करने लगा।

चाय तैयार हो गई तो अनिता ने प्याली बनाकर जॉन को दे दी। अपने और पीटर के लिए सॉसर में चाय डालती हुई बोली, "हमारे घर में कुल दो ही प्यालियाँ थीं। वही मैं उठा लायी थी। आते ही एक टूट गयी।"

जॉन और पीटर ने एक-दूसरे की तरफ देखकर आँखें हटा लीं।

"यह भी कॉटेज है तो अच्छी, मगर ज़रा दूर पड़ जाती है," पीटर दोनों हाथों में सॉसर सम्भालता हुआ बोला। "तुम पादरी से कहो कि तुम्हें डी या ई कॉटेज में जगह दे दें। वे दोनों खाली पड़ी हैं। उनमें दो-दो बड़े कमरे हैं।"

"अच्छा ?" अनिता बोली। "वैसे मेरे लिए तो यही कमरा बहुत बड़ा है। घर में हमारे पास इससे भी छोटा एक ही कमरा है जिसमें हम तीन जने रहते हैं।... उसमें से भी आधा कमरा मेरे भाई ने ले रखा है और आधे कमरे में हम माँ-बेटी गुज़ारा करती हैं। अब मैं आ गयी हूँ तो माँ को जगह की कुछ सहूलियत हो गयी होगी। ...मैं अपनी माँ को बहुत प्यार करती हूँ। पहला वेतन मिलने पर मैं उसके लिए कुछ अच्छे-अच्छे कपड़े भेजना चाहती हूँ। उसके पास अच्छे कपड़े नहीं हैं।"

पीटर और जॉन की आँखें पल-भर मिली रहीं। जॉन का निचला होंठ थोड़ा सिकुड़ गया।

"चाय बहुत अच्छी है!"

"गुड नाइट !"

टार्च की रोशनी काफी नीचे पहुँच गयी, तो जॉन पैर से रास्ता टटोलता हुआ बोला, "यह पादरी का खुफिया है खुफिया। मैं इस हरामी को रग-रग पहचानता हूँ।"

पीटर खामोश चलता रहा।

सुबह जिस समय पीटर की आँख खुली, उसने देखा कि वह जॉन के क्वार्टर में एक आराम कुरसी पर पड़ा है—वहीं उस पर दो कम्बल डाल दिये गए हैं। सामने रम की खाली बोतल रखी है। वह उठा, तो उसकी गरदन दर्द कर रही थी। उसने खिड़की के पास जाकर देखा कि जॉन चाय का फ्लास्क लिये डाइनिंग रूम की तरफ से आ रहा है। वह ठण्डी सलाखों को पकड़े दूर तक फैली बरफ को देखता रहा।

जॉन कमरे में आ गया और भारी कदमों से तख्ते पर आवाज करता हुआ पीटर के पास आ खड़ा हुआ।

"कुछ सुना, ए ?"

पीटर ने उसकी तरफ देखा।

"रात को पादरी ने उसे अपने यहाँ बुलाया था...।"

"किसे, अनिता को ?"

जॉन ने सिर हिलाया। उसकी आँखें क्षण-भर पीटर की आँखों से मिली रहीं। पीटर गम्भीर होकर दीवार की तरफ देखने लगा।

"टैफी, मैं उससे कहूँगा कि वह यहाँ से नौकरी छोड़कर चली जाय। उसे पता नहीं है कि यहाँ वह किन जानवरों के बीच आ गई है।"

जॉन फ्लास्क से प्यालियों में चाय उँडेलने लगा।

"उसमें खुद्दारी हो तो उसे आप ही चली जाना चाहिए," वह बोला। "किसी के कहने से क्या होगा ? कुछ नहीं।"

"हो या न हो, मगर मैं उससे कहूँगा जरूर...।"

"तुम पागल हुए हो ? हमें दूसरों से मतलब ? वह अनजान बच्ची तो है नहीं।"

पीटर कुछ न कहकर दीवार की तरफ देखता हुआ चाय के घूँट भरने लगा।

"अब जल्दी से तैयार हो आओ, गिरजे का वक्त हो रहा है!"

पीटर ने दो घूंट में ही चाय की प्याली खाली करके रख दी। "मैं गिरजे में नहीं जाऊँगा।"

जॉन कुरसी की बाँह पर बैठ गया।

"आज तुम्हारी सलाह क्या है?"

"कुछ नहीं, मैं गिरजे में नहीं जाऊँगा।"

जॉन मुँह-ही-मुँह बड़बड़ाकर ठण्डी चाय की चुस्कियाँ लेता रहा।

दो दिन की बरफबारी के बाद फ़ादर फिशर के डिनर की रात को मौसम खुल गया। डिनर से पहले घण्टा-भर सब लोग 'म्यूज़िकल चेयर्स' का खेल खेलते रहे। उस खेल में मणि नानावटी को पहला पुरस्कार मिला। पुरस्कार मिलने पर उससे जो-जो मजाक किये गये, उनसे उसका चेहरा इतना सुर्ख हो गया कि वह थोड़ी देर के लिए कमरे से बाहर भाग गयी। मिसेज मर्फ़ी उस दिन बहुत सुन्दर हैट और रिबन लगाकर आई थी; उसकी बहुत प्रशंसा की गयी। डिनर के बाद लोग काफ़ी देर तक आग के पास खड़े बातें करते रहे। पादरी ने सबसे नई मेट्रन का परिचय कराया। अनिता अपने शाल में सिकुड़ी सबके अभिवादन का उत्तर मुस्कराकर देती रही।

एटकिन्सन मिसेज मर्फ़ी को आँख से इशारा करके मुसकराया।

हिचकॉक अपनी मुस्कराहट जाहिर न होने देने के लिए सिगार के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। जॉन उधर से नजर हटाकर हिचकॉक से बात करने लगा।

"तुम्हें तली हुई मछली अच्छी लगी? ...मुझे तो जरा अच्छी नहीं लगी।"

"मुझे मछली हर तरह की अच्छी लगती है, कच्ची हो या तली हुई··· हाँ मछली हो।"

जॉन ने मुंह बिचकाया।

"रम की बोतल साथ हो तो भी तुम्हें अच्छी नहीं लगती?"

जॉन दाँत खोलकर मुस्कराया और सिर हिलाने लगा।

मजलिस बरखास्त होने पर जब सब लोग बाहर निकले तो हिचकॉक ने धीमे स्वर में जॉन से पूछा, "क्या बात है, आज पीटर दिखायी नहीं

दिया...?"

जॉन उसका हाथ दबाकर उसे जरा दूर ले गया और दबे हुए स्वर में बोला, "उसे पादरी ने जवाब दे दिया है।"

"पीटर को भी ?"

जॉन ने सिर हिलाया।

"वह कल सुबह यहाँ से चला जायगा।"

"क्या कोई खास बात हुई थी ?"

जॉन ने उसका हाथ दबा दिया। पादरी और बैरो के साथ-साथ अनिता सिर झुकाये शाल में छिपी-सिमटी बरामदे से निकलकर चली गयी। जॉन की भूरी आँखें कई गज उनका पीछा करती रहीं।

"यह आप भी गरम पानी से नहाता है या नहीं ?"

"क्यों ?" बात हिचकॉक की समझ में नहीं आयी।

"इसने डॉली को गरम पानी से नहलाया था न...!"

हिचकॉक हो-हो करके हँस दिया। बरामदे में से गुजरते हुए हकीम ने आवाज दी, "खूब कहकहे लग रहे हैं ?"

"मैं तली हुई मछली हजम कर रहा हूँ," हिचकॉक ने उत्तर दिया, और ऊँची आवाज में जॉन को बतलाने लगा कि बगैर काँटे की मासेर मछली कितनी ताकतवर होती है।

सुबह जॉन, अनिता, नानावती और हकीम बैचलर्स डाइनिंग रूम में नाश्ता कर रहे थे, जब पीटर का रिक्शा दरवाजे के पास से निकलकर चला गया। पीटर रिक्शे में सीधा बैठा रहा। न उसे किसी ने अभिवादन किया, और न ही वह किसी को अभिवादन करने के लिए रुका। अनिता की झुकी हुई आँखें और झुक गयीं—जॉन ऐसे गरदन झुकाये रहा जैसे उस तरफ़ उसका ध्यान हो न हो। बैचलर्स डाइनिंग रूम में कई क्षण खामोशी छायी रही।

सहसा पादरी को खिड़की के पास से गुजरते देखकर सब लोग अपनी-अपनी सीट से आधा-आधा उठ गये।

"गुड मॉर्निंग फादर !"

"गुड मॉर्निंग माई सन्स !"

"आज का दिन बहुत ही अच्छा रहा," हकीम ने चेहरे पर विनीत मुस्कराहट लाकर कहा।

"सब खुदी लोगों की नजर में है।"

"मैं तो चाहता हूँ कि ऐसे दिन रोज हुआ करें...।"

पादरी आगे निकल गया, तो भी कुछ देर हकीम के चेहरे पर वह मुस्कराहट बनी रही।

"मेरे लिए उबला हुआ अण्डा अभी तक क्यों नहीं आया?" सहसा जॉन गुस्से में बड़बड़ाया। अनिता स्लाइस पर मक्खन लगाती हुई सिहर गयी। लिण्डू ने एक प्लेट में उबला हुआ अण्डा लाकर जॉन के सामने रख दिया।

"छीलकर लाओ!" जॉन ने उसी तरह कहा और प्लेट को हाथ मार दिया। प्लेट अण्डे समेत नीचे जा गिरी और टूट गयी।

उधर गिरजे की घण्टियाँ बजने लगीं... डिंग-डांग! डिंग-डांग! डिंग-डांग!"

अजीब बात थी कि खुद कमरे में होते हुए भी बाक़ी को कमरा खाली लग रहा था।

उसे काफ़ी देर हो गयी थी कमरे में आये—या शायद उतनी देर नहीं हुई थी जितनी कि उसे लग रही थी। वक़्त उसके लिए दो तरह से बीत रहा था—जल्दी भी और आहिस्ता भी . . . उसे, दरअसल, वक़्त का ठीक अहसास हो नहीं रहा था।

कमरे में कुछ-एक कुरसियाँ थीं—लकड़ी की। वैसी ही, जैसी सब पुलिस-स्टेशनों पर होती हैं। कुरसियों के बीचोंबीच एक मेज़नुमा तिपाई थी जो कि कुहनी ऊपर रखते ही झूलने लगती थी। आठ फुट और आठ फुट का वह कमरा इनसे पूरा घिरा था। टूटे पलस्तर की दीवारें कुरसियों से लगभग सटी हुई जान पड़ती थीं। शुक्र था कि कमरे में दरवाज़े के अलावा एक खिड़की भी थी।

बाहर अहाते में बार-बार चरमराते जूतों की आवाज़ सुनाई देती थी—यहाँ वह सब-इन्स्पेक्टर था जो उसे कमरे के अन्दर छोड़ गया था। उस आदमी का चेहरा आँखों से दूर होते ही भूल जाता था, पर सामने आने पर फिर एकाएक याद हो आता था। कल से आज तक वह कम-से-कम बीस बार उसे भूल चुका था।

उसने सुलगाने के लिए सिगरेट जेब से निकाला, पर यह देखकर कि उसके पैरों के पास पहले ही काफ़ी टुकड़े जमा हो चुके हैं, उसे वापस जेब में रख लिया। कमरे में एक ऐश-ट्रे का न होना उसे शुरू से ही अखर रहा था। इस वजह से वह एक भी सिगरेट आराम से नहीं पी सका था। पहला सिगरेट पीते हुए उसने सोचा था कि पीकर टुकड़ा खिड़की से बाहर फेंक देगा। पर उधर जाकर देखा कि खिड़की के ठीक नीचे एक चारपाई बिछी है जिसपर लेटे या बैठे हुए दो-एक कान्स्टेबल अपना आराम का वक़्त बिता रहे हैं। उसके बाद फिर दूसरी बार वह खिड़की के पास नहीं गया।

अपने को कमरे में व्यस्त रखने के लिए सिगरेट पीने के अलावा भी जो कुछ किया जा सकता था, वह कर चुका था। जितनी कुरसियाँ थीं, उनमें से हर-एक पर एक-एक बार बैठ चुका था। उनके गिर्द चहलकदमी कर चुका था। दीवारों का पलस्तर दो-एक जगह से उखाड़ चुका था। मेज पर एक बार पेंसिल से और न जाने कितनी बार उँगली से अपना नाम लिख चुका था। एक ही काम था जो उसने नहीं किया था—वह था दीवार पर लगी क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर को थोड़ा तिरछा कर देना। बाहर अहाते में लगातार जूते की चरमर सुनाई न दे रही होती, तो अब तक उसने यह भी कर दिया होता।

उसने अपनी नब्ज पर हाथ रखकर देखा कि बहुत तेज तो नहीं चल रही। फिर हाथ हटा लिया—कि कोई उसे ऐसा करते देख न ले।

उसे लग रहा था कि वह थक गया है और उसे नींद आ रही है। रात को ठीक से नींद नहीं आयी थी। ठीक से क्या, शायद बिल्कुल नहीं आयी थी। या शायद नींद में भी उसे लगता रहा था कि वह जाग रहा है। उसने बहुत कोशिश की थी कि जागने की बात भूलकर किसी तरह सो सके—पर इस कोशिश में ही पूरी रात निकल गयी थी।

उसने जेब से पेंसिल निकाल ली और बायें हाथ पर अपना नाम लिखने लगा—बाशी, बाशी, बाशी। सुभाष, सुभाष, सुभाष।

आज सुबह यह नाम प्रायः सभी अखबारों में छपा था। रोज़ के अखबार के अलावा उसने तीन-चार अखबार और खरीदे थे। किसी में दो इंच में खबर दी गयी थी, किसी में दो कॉलम में। जिसने दो कॉलम में खबर दी थी, वह रिपोर्टर उसका परिचित था। वह अगर उसका परिचित न होता, तो शायद . . .

वह अब अपनी हथेली पर दूसरा नाम लिखने लगा—वह नाम जो उसके नाम के साथ-साथ अखबारों में छपा था—नत्थासिंह, नत्थासिंह, नत्थासिंह।

यह नाम लिखते हुए उसकी हथेली पर पसीना आ गया। उसने पेंसिल रखकर हथेली को मेज से पोंछ लिया।

जूते की चरमर दरवाजे के पास आ गयी। सब-इन्स्पेक्टर ने एक बार

अन्दर झाँककर पूछ लिया, "आपको किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं ?"

"नहीं," उसने सिर हिला दिया। उसे तब ऐश-ट्रे का ध्यान नहीं आया।

"पानी-आनी की ज़रूरत हो, तो माँग लीजियेगा।"

उसने फिर सिर हिला दिया—कि ज़रूरत होगी, तो माँग लेगा। साथ पूछ लिया, "अभी और कितनी देर लगेगी ?"

"अब ज़्यादा देर नहीं लगेगी," सब-इन्स्पेक्टर ने दरवाज़े के पास से हटते हुए कहा, "पन्द्रह-बीस मिनट में ही उसे ले आयेंगे।"

इतना ही वक़्त उसे तब भी बताया गया था जब उसे उस कमरे में छोड़ा गया था। तब से अब तक क्या कुछ भी वक़्त नहीं बीता था ?

जूते के अन्दर, दायें पैर के तलवे में, खुजली हो रही थी। जूता खोलकर एक बार अच्छी तरह खुजला लेने की बात वह कितनी ही बार सोच चुका था। पर हाथ दो-एक बार नीचे झुकाकर भी उससे तस्मा खोलते नहीं बना। उस पैर को दूसरे पैर से दबाये वह जूते को ज़मीन पर रगड़कर रह गया।

हाथ की पेंसिल फिर चल रही थी। उसने अपनी हथेली को देखा। दोनों नामों के ऊपर उसने बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया था—अगर।

अगर...।

अगर कल सुबह वह स्कूटर की बजाय बस से आया होता...।

अगर बर्फ़ ख़रीदने के लिए उसने स्कूटर को दायरे के पास न रोका होता...।

अगर...।

उसने जूते को फिर ज़मीन पर रगड़ लिया। मन में मिन्नी का चेहरा उभर आया। अगर वह कल मिन्नी से न मिला होता...।

वह, जो कभी सुबह नौ बजे से पहले नहीं उठता था, सिर्फ़ मिन्नी की वजह से उन दिनों सुबह छह बजे तैयार होकर घर से निकल जाता था। मिन्नी ने मिलने की जगह भी क्या बतायी थी—अजमेरी गेट के अन्दर हलवाई की एक दुकान! जिस प्राइवेट कॉलेज में वह पढ़ने आती थी, उसके नज़दीक बैठने लायक और कोई जगह थी ही नहीं। एक दिन वह उसे जामा मस्जिद ले गया था—कि कुछ देर वहाँ के किसी होटल में बैठेंगे। पर उतनी

सुबह किसी होटल का दरवाज़ा नहीं खुलता था। आखिर [illegible] शुरू में [illegible] वे उसी दुकान पर लौट आये थे। दुकान के अन्दर [illegible] कोई नहीं रहती थी। सुबह-सुबह लस्सी-पूरी का नाश्ता करने-वाले लोग वहाँ जमा हो जाते थे। उनमें से बहुत-से तो उन्हें पहचानने भी लगे थे—क्योंकि वे रोज़ खाने की मेज़ के पास घण्टा-घण्टा भर बैठे रहते थे। मिन्नी अपने लिए सिर्फ़ कोकाकोला की बोतल मँगवाकर सामने रख लेती थी—भूख उसे भी नहीं थी। लस्सी-पूरी का ऑर्डर उसे अपने लिए देना पड़ता था। जल्दी-जल्दी खाने की आदत होने से सामने का पत्ता दो मिनट में ही साफ़ हो जाता था। मिन्नी कई बार दो-दो पीरियड मिस कर देती थी, इसलिए वहाँ बैठने के लिए उसे और-और पूरी मँगवाकर खाते रहना पड़ता था। उससे सुबह-सुबह उतना नाश्ता नहीं खाया जाता था, पर चुपचाप कौर निगलते जाने के सिवा कोई चारा नहीं होता था। मिन्नी देखती कि खा-खाकर उसकी हालत खस्ता हो रही है, तो कहती कि चलो, कुछ देर पास की गलियों में टहल लिया जाये। सड़क पर वे नहीं टहल सकते थे; क्योंकि वहाँ कॉलेज की और लड़कियाँ आती-जाती मिल जाती थीं। हलवाई की दुकान के साथ से गली अन्दर को मुड़ती थी—उससे आगे गलियों की लम्बी भूल-भुलैया थी, जिसमें वे किसी भी तरफ़ को निकल जाते थे। जब चलते-चलते सामने सड़क का मुहाना नज़र आ जाता, तो वे वहीं से लौट पड़ते थे।

"इस इतवार को कोई देखने आनेवाला है," उस दिन मिन्नी ने कहा था।

"कौन आनेवाला है?"

"कोई है—काठमाण्डू से आया है। दस दिन में शादी करके लौट जाना चाहता है।"

"फिर?"

"फिर कुछ नहीं। आयेगा, तो मैं उससे साफ़-साफ़ सब कह दूँगी।"

"क्या कह दोगी?"

"यह क्यों पूछते हो? तुम्हें पूछने की ज़रूरत नहीं है।"

"अगर उस वक़्त तुम्हारी ज़बान न खुल सकी, तो?"

-"तो समझ लेना कि ऐसे ही बेकार की लड़की थी . . . इस लायक ही नहीं कि तुम उससे किसी तरह का रास्त रखते ।"

"पर तुमने पहले ही घर में क्यों नहीं कह दिया ?"

"यह तुम जानते हो कि मैंने नहीं कहा ?" कहते हुए मिन्नी ने उसकी उँगलियाँ अपनी उँगलियों में ले ली थीं । "अभी तो तुम दूसरे के घर में रहते हो। जब तुम अपना घर ले लोगे, तो मैं . . . तब तक मैं ग्रेजुएट भी हो जाऊँगी ।"

एक बहते नल का पानी गली में यहाँ से-वहाँ तक फैला था । बचने की कोशिश करने पर भी दोनों के जूते कीचड़ से लथपथ हो गये थे । एक जगह उसका पाँव फिसलने लगा तो मिन्नी ने बाँह से पकड़कर उसे सँभाल लिया । कहा, "ठीक से देखकर नहीं चलते न ! पता नहीं, अकेले रहकर कैसे अपनी देखभाल करते हो ?"

- अगर . . . ।

अगर मिन्नी ने यह न कहा होता, तो वह उतना खुश-खुश न लौटता । उस हालत में जरूर स्कूटर के पैसे बचाकर बस से आया होता ।

अगर घर के पास के दायरे में पहुँचने तक उसे प्यास न लग आयी होती . . . ।

उसने स्कूटर को वहाँ रोक लिया था—कि दस पैसे की बर्फ खरीद ले । महीना जुलाई का था, फिर भी उसे दिन-भर प्यास लगती थी । दिन में कई-कई बार वह बर्फ खरीदने वहाँ आता था । दुकानदार उसे दूर से देखकर ही पेटी खोल लेता था और बर्फ तोड़ने लगता था ।

पर तब तक अभी बर्फ की दुकान खुली नहीं थी ।

बर्फ खरीदने के लिए उसने जो पैसे जेब से निकाले थे, उन्हें हाथ में लिये वह लौटकर स्कूटर के पास आया, तो एक और आदमी उसमें बैठ चुका था । वह पास पहुँचा, तो स्कूटरवाले ने उसकी तरफ हाथ बढ़ा दिया—जैसे कि वहाँ उतरकर वह स्कूटर खाली कर चुका हो ।

"स्कूटर अभी खाली नहीं है," उसने स्कूटरवाले से न कहकर अन्दर बैठे आदमी से कहा ।

- "खाली नहीं से मतलब ?" उस आदमी का चेहरा सहसा तमतमा

उठा। वह एक लम्बा-तगड़ा सरदार था—लुंगी के साथ मलमल का कुरता पहने। लम्बा शायद उतना नहीं था, पर तगड़ा होने से लम्बा भी लग रहा था।

"मतलब कि मैंने अभी इसे खाली नहीं किया है।"

"खाली नहीं किया, तो मैं अभी कराऊँ तुझसे खाली?" कहते हुए सरदार ने दाँत भींच लिये। "जल्दी से उसके पैसे दे, और अपना रास्ता देख, वरना...।"

"वरना क्या होगा?"

"बताऊँ तुझे क्या होगा?" कहते हुए सरदार ने उसे कॉलर से पकड़कर अपनी तरफ़ खींच लिया और उसके मुँह पर एक झाँपड़ दे मारा—"यह होगा। अब आया समझ में? दे जल्दी से उसके पैसे और दफ़ा हो यहाँ से।"

उसका खून खौल गया—कि एक आदमी, जिसे कि वह जानता तक नहीं, भरे बाजार में उसके मुँह पर थप्पड़ मारकर उससे दफ़ा होने को कह रहा है! उसका चश्मा नीचे गिर गया था। उसे ढूंढ़ते हुए उसने कहा, "सरदार, जरा जबान सँभालकर बात कर।"

"क्या कहा? जबान सँभालकर बात करूँ? हरामजादे, तुझे पता है मैं कौन हूँ?" जब तक उसने आँखों पर चश्मा लगाया, सरदार स्कूटर से नीचे उतर आया था। उसका एक हाथ कुरते की जेब में था।

"तू जो भी है, इस तरह की बदतमीजी करने का तुझे कोई हक़ नहीं," कहते-न-कहते उसने देखा कि सरदार की जेब से निकलकर एक चाकू उसके सामने खुल गया है। "तू अगर समझता है कि..." यह वाक्य वह पूरा नहीं कर पाया। खुले चाकू की चमक से उसकी जबान और छाती सहसा जकड़ गयी। उसके हाथ से पैसे वहीं गिर गये और वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

"ठहर मादर...अब जा कहाँ रहा है?" उसने पीछे से सुना।

"पैसे साहब!" यह आवाज स्कूटरवाले की थी।

उसने जेब में हाथ डाला और जितने सिक्के हाथ में आये निकालकर सड़क पर फेंक दिये। पीछे मुड़कर नहीं देखा। घर की गली बिल्कुल

सामने थी, पर उस तरफ न जाकर वह जाने किस तरफ को मुड़ गया। वहाँ तक और कितनी देर तक भागता रहा, इसका उसे होश नहीं रहा। जब होश हुआ, तो वह एक अपरिचित मकान के जीने में खड़ा हाँफ रहा था...।

उसने पेंसिल हाथ से रख दी और हथेली पर बने शब्दों को अँगूठे से मल दिया। तब तक न जाने कितने शब्द और वहाँ लिखे गये थे जो पढ़े भी नहीं जाते थे। सब मिलाकर आड़ी-तिरछी लकीरों का एक गुंजल था जो मल दिये जाने पर भी पूरी तरह मिटा नहीं था। हथेली सामने किये वह कुछ देर उस अधघुले गुंजल को देखता रहा। हर लकीर का नोक-मुक्ता वहीं से बाकी था। उसने सोचा कि वहाँ कहीं एक वाश-बेसिन होता, तो वह दोनों हाथों को अच्छी तरह मलकर धो लेता।

"हलो...!"

उसने सिर उठाकर देखा। महेन्द्र, जिसके यहाँ वह रहता था, और वह रिपोर्टर जिसने दो कॉलम में खबर दी थी, उसके सामने खड़े थे। सब-इन्स्पेक्टर के जूते की चरमर दरवाजे से दूर जा रही थी।

"तुम इस तरह बुझे-से क्यों बैठे हो?" महेन्द्र ने पूछा।

"नहीं तो," उसने कहा और मुसकराने की कोशिश की।

"ये लोग उसे लॉक-अप से यहाँ ले आये हैं। अभी थोड़ी देर में उसे शनाख्त के लिए इधर लायेंगे।"

उसने सिर हिलाया। वह अब भी वाश-बेसिन की बात सोच रहा था।

"थानेदार बता रहा था कि सुबह-सुबह उसके घर जाकर इन्होंने उसे पकड़ा है। ये लोग कब से उसके पीछे थे—पर पकड़ने का कोई मौका इन्हें नहीं मिल रहा था। कोई भला आदमी उसकी रिपोर्ट ही नहीं करता था।"

उसने अब फिर मुसकराने की कोशिश की। पेंसिल उसने मेज से उठाकर जेब में डाल ली।

"मैं आज फिर अखबार में उसकी खबर दूँगा," रिपोर्टर बोला—"जब तक इस आदमी को सजा नहीं हो जाती, हम इसका पीछा नहीं छोड़ेंगे।"

उसे लगा कि उसके कान गरम हो रहे हैं। उसने हल्के-से एक का
को सहला लिया।

"तय हुआ है," महेन्द्र ने कहा, "कि उसे साथ लिये हुए चार सिपाही
अहाते में दायीं तरफ से आयेंगे और बायीं तरफ से निकल जायेंगे। उ
यह पता नहीं चलने दिया जायेगा, कि तुम यहाँ हो। तुम यहाँ बैठे-बै
उसे देख लेना और बाद में बता देना कि हाँ, यही आदमी है जिसने तु
पर चाकू चलाना चाहा था। वह थानेदार के सामने इतना तो मान ग
है कि कल उसने स्कूटर को रोककर झगड़ा किया था, पर चाकू निकाल
की बात नहीं मानता। कहता है कि चाकू-वाकू तो उसके पास होता ही
नहीं—उसके दुश्मनों ने खामखाह उसे फँसाने के लिए रिपोर्ट लिखव
दी है। यह भी कह रहा था कि वह तो अब इस इलाके में रहना नह
चाहता—दो-एक मुक़दमों का फ़ैसला हो जाये, तो वह इस इलाक़े से चल
जायेगा।"

वह कुछ देर क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर को देखता रहा। फि
अपनी उँगलियों को मसलता हुआ आहिस्ता से बोला, "मेरा ख़याल है
हमें रिपोर्ट नहीं लिखवानी चाहिए थी।"

"तुम फिर वही बुज़दिली की बात कर रहे हो?" महेन्द्र थोड़ा ते
हुआ। "तुम चाहते हो कि ऐसे आदमी को गुण्डागर्दी की खुली छूट मिल
रहे?"

उसकी आँखें तस्वीर से हटकर पल-भर महेन्द्र के चेहरे पर टिक
रहीं। उसे लगा कि जो बात वह कहना चाहता है, वह शब्दों में नहीं कह
जा सकती।

"आपको डर लग रहा है?" रिपोर्टर ने पूछा।

"बात डर की नहीं...।"

"तो और क्या बात है?" महेन्द्र फिर बोल उठा। "तुम कल भ
कम्प्लेंट लिखवाने में आना-कानी कर रहे थे...।"

"मैंने यह बात भी अपनी रिपोर्ट में लिखी है," रिपोर्टर ने कहा और
एक सिगरेट सुलगा लिया।

"ख़ैर रिपोर्ट तो अब हो गयी है और उस आदमी को गिरफ़्तार भी

कर लिया गया है," महेन्द्र बोला। "तुम्हें डरना नहीं चाहिए। इतने लोग तुम्हारे साथ हैं।"

"मैं समझता हूँ कि गुण्डागर्दी को रोकने में आदमी की जान भी चली जाये, तो उसे परवाह नहीं करनी चाहिए," रिपोर्टर ने कश खींचते हुए कहा। "इन लोगों के हौसले इतने बढ़ते जा रहे हैं कि ये किसी को कुछ समझते ही नहीं। पिछले दो साल में ही गुण्डागर्दी की घटनाएँ पहले से पौने तीन गुना हो गयी हैं—यानी पहले से एक सौ पचहत्तर फीसदी ज्यादा। अगर अब भी इनकी रोकथाम न की गयी, तो पाँच साल में आदमी के लिए घर से निकलना मुश्किल हो जायेगा।"

रिपोर्टर के सिगरेट की राख उसके घुटने पर आ गिरी। उसने हलके से उसे झाड़ दिया और बाहर की तरफ देखने लगा।

"ये लोग अब उसके घर चाकू तलाश करने गये हैं," महेन्द्र दोनों जेबों में हाथ डाले चलने के लिए तैयार होकर बोला। "हो सकता है, तुमसे चाकू की शनाख्त के लिए भी कहा जाये।"

"चाकू की शनाख्त कैसे होगी?" उसने उसी स्वर में पूछ लिया।

"कैसे होगी?" महेन्द्र फिर उत्तेजित हो उठा। "देखकर कह देना होगा कि हाँ, यही चाकू है—और शनाख्त कैसे होती है?"

"पर मैंने तो चाकू ठीक से देखा नहीं था।"

"नहीं देखा था, तो अब देख लेना। हम थोड़ी देर में फोन करके यहीं से पता कर लेंगे। तुम यहाँ से निकलकर सीधे घर चले जाना और रात को मेरे लौटने तक घर पर ही रहना।"

वे लोग चले गये, तो कमरा उसे फिर खाली लगने लगा—बिल्कुल खाली—जिसमें वह खुद भी जैसे नहीं था। सिर्फ कुरसियाँ थीं, दीवारें थीं, और एक खुला दरवाजा था... बाहर जूते की चरमर अब सुनाई नहीं दे रही थी।

"सुनो...," उसे लगा जैसे उसने किसी की आवाज सुनी हो। उसने आस-पास देखा। कोई भी वहाँ नहीं था। सिर्फ सिर के ऊपर घूमता पंखा आवाज कर रहा था। उसे हैरानी हुई कि अब तक उसे इस आवाज का पता क्यों नहीं चला। उसे तो इतना अहसास भी नहीं था कि कमरे में एक

[illegible] भी है ।

फिर [illegible] की भीड़ में [illegible] की तरफ़ देखने लगा—उसकी तेज़ रफ़्तार में अलग-अलग चेहरों को पहचानने की कोशिश करने लगा। और ख़याल आया कि उसके सिर के बाल [illegible] हैं और वह सुबह से नहाया नहीं है। आज सुबह से ही नहीं, कल सुबह से ...।

कल दिन-भर वे लोग सड़कों और बस्तियों में घूमते रहे थे। वह और महेन्द्र। घर पहुँचकर उसने महेन्द्र को उस घटना के बारे में बतलाया, तो वह सुनते ही उस सम्बन्ध में 'कुछ करने' को उतावला हो उठा था। पहले उन्होंने दायरे के पास जाकर पूछ-ताछ की। वहाँ कोई भी कुछ बतलाने को तैयार नहीं था। जो मोची दायरे के पास बैठा था, वह सिर झुकाये चुपचाप हाथ के जूते को सीता रहा। उसने कहा कि वह घटना के समय वहाँ नहीं था—नल पर पानी पीने गया था। और भी जिस-जिससे पूछा, उसने सिर हिलाकर मना कर दिया कि वह उस आदमी के बारे में कुछ नहीं जानता। सिर्फ़ मेडिकल स्टोर के इंचार्ज ने दबी आवाज़ में कहा, "नत्थासिंह को यहाँ कौन नहीं जानता? अभी कुछ ही दिन पहले उसके आदमियों ने पिछली गली में एक पानवाले का क़त्ल किया है। वे तीन-चार भाई हैं और इस इलाक़े के माने हुए गुण्डे हैं। ख़ैरियत समझिए कि आपकी जान बच गयी, वरना हममें से तो किसी को इसकी उम्मीद नहीं रही थी। अब बेहतरी इसी में है कि आप इस चीज़ को चुपचाप पी जायें और बात को ज्यादा बिखरने न दें। यहाँ आपको एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा, जो उसके ख़िलाफ़ गवाही देने को तैयार हो। अगर आप पुलीस में रिपोर्ट करें और पुलीस यहाँ तहक़ीक़ात के लिए आये, तो सब लोग साफ़ मुकर जायेंगे कि यहाँ पर ऐसा कुछ हुआ ही नहीं।"

पर महेन्द्र का कहना था कि रिपोर्ट ज़रूर करेंगे—ऐसे आदमी को सज़ा दिलवाये बग़ैर नहीं छोड़ा जा सकता।

थानेदार से बात करने पर उसने कहा, "हाँ-हाँ, रिपोर्ट आपको ज़रूर लिखवानी चाहिए। इन गुण्डों से मत्था लेने में यूँ थोड़ा-बहुत ख़तरा तो रहता ही है—और कुछ न करें, आप पर एसिड-वेसिड ही डाल दें। ऐसा उन्होंने दो-एक बार किया भी है। पर हम आपकी [illegible] हैं,

आपको डरना नहीं चाहिए। एक अच्छे शहरी होने के नाते आपका फर्ज है कि आप रिपोर्ट जरूर लिखवायें। हम लोगों को भी तो इनके खिलाफ कारवाई करने का मौका इसी तरह मिल सकता है।"

रिपोर्ट लिखवाने के बाद वे लोग अखबारों के दफ्तरों में गये—एस० पी० और डी० एस० पी० से मिले। उस दौरान कई बातों का पता चला—कि उस आदमी का मुख्य धन्धा लड़कियों की दलाली करना है—कि ऊँचे सरकारी और राजनीतिक हलके के अमुक-अमुक व्यक्तियों को वह लड़कियाँ सप्लाई करता है—कि उसकी कितनी भी रिपोर्ट की जायें, कभी उसके खिलाफ कारवाई नहीं की जाती—कि नीचे में अमुक-अमुक लोग उससे पैसे खाते हैं—कि नीचे से कारवाई कर भी दी जाये, तो ऊपर से अमुक-अमुक का फोन आ जाता है जिससे कारवाई वापस ले ली जाती है...।

"वह तो बेचारा सिर्फ दलाली करता है," डी० एस० पी० ने जरूरी फाइलों पर दस्तखत करते हुए कहा।"कत्ल-अत्ल करने का उसका हौसला नहीं पड़ सकता। हम उसके खिलाफ कारवाई करेंगे—आपको डरना बिल्कुल नहीं चाहिए।"

अखबारों के चीफ-क्राइम रिपोर्टर ने तीस हजारी कैण्टीन को ठण्डी चाय के लिए छोकरे को डाँट-फटकार करते हुए सलाह दी, "आप पहला काम यही कीजिये कि जाकर अपनी रिपोर्ट वापस ले लीजिए। थानेदार मेरा वाकिफ है, आप चाहें तो उससे मेरा नाम ले सकते हैं—कि पण्डित माधोप्रसाद ने यह राय दी है। वह अकेला नहीं है, एक बहुत बड़ा गिरोह उसके साथ है। हम लोग इनसे उलझ लेते हैं क्योंकि एक तो हम इन सब को पहचानते हैं और दूसरे हिफाजत के लिए रिवॉल्वर-आल्वर अपने साथ रखते हैं। ये भी जानते हैं कि जितने बड़े गुण्डे ये दूसरों के लिए हैं, उतने ही बड़े गुण्डे हम इनके लिए हैं। इसलिए हमसे डरते भी हैं। पर आप-जैसे आदमी को तो ये एक दिन में साफ कर देंगे—आपको इनसे बचकर रहना चाहिए...।"

अपनी अनेक राजनीतिक व्यस्तताओं से समय निकालकर उस विभाग के मन्त्री ने भी अपने लॉन में चहलकदमी करते हुए शाम को एक मिनट

उनसे बात की। छूटते ही पूछा, "किस चीज़ की अदावत थी तुम लोगों में ?"

"अदावत का तो कोई सवाल नहीं था," वह जल्दी-जल्दी कहने लगा। "मैं सुबह स्कूटर में घर की तरफ़ आ रहा था . . .।"

"तुम अपनी शिकायत एक काग़ज़ पर लिखकर सेक्रेटरी को दे दो," उन्होंने बीच में ही कहा। "उस पर जो कारवाई करनी होगी, कर दी जायेगी।" और वे लॉन में खड़े दूसरे ग्रुप की तरफ़ मुड़ गये।

रात को घर लौटने पर उसे अपने हाथ-पैर ठण्डे लग रहे थे। पर महेन्द्र का उत्साह कम नहीं हुआ था। वह आधी रात तक इधर-उधर फ़ोन करके तरह-तरह के आँकड़े जमा करता रहा। "उसे कम-से-कम तीन साल की सज़ा होनी चाहिए," उसने सोने से पहले आँकड़ों के आधार पर निष्कर्ष निकाल लिया।

महेन्द्र के सो जाने के बाद वह काफ़ी देर साथ के कमरे से आती साँसों की आवाज़ सुनता रहा था—उस आवाज़ में उतनी सुरक्षा का अहसास उसे पहले कभी नहीं हुआ था। वह आवाज़—एक जीवित आवाज़—उसके बहुत पास थी और लगातार चल रही थी। जितनी जीवित वह आवाज़ थी, उतना ही जीवित था उसे सुन सकना—चुपचाप लेटे हुए, बिना किसी कोशिश के, अपने कानों से सुन सकना। गरमी और उमस के बावजूद रात ठण्डी थी—कुछ देर पहले से हलकी-हलकी बूँदें पड़ने लगी थीं। कभी-कभी उसे सन्देह होता कि जो आवाज़ वह सुन रहा है, वह रात की ही तो आवाज़ नहीं—सिर्फ़ पत्तों के हिलने और बूँदों के गिरने की आवाज़। कि सुनना भी कहीं सुनना न होकर अपने से बाहर का कोरा शब्द ही तो नहीं। तब वह करवट बदलकर अपने हाथ-पैरों का 'होना' महसूस करता और फिर से साँसों का शब्द सुनने लगता . . .।

खिड़की से कभी-कभी हवा का झोंका आता जिससे रोंगटे सिहर जाते थे। उस सिहरन में हवा के स्पर्श के अतिरिक्त भी कुछ होता—शायद रोंगटों में अपने अस्तित्व की अनुभूति। एक झोंके के बीत जाने पर वह दूसरे की प्रतीक्षा करता, जिससे कि फिर से उस स्पर्श और सिहरन को अपने में महसूस कर सके। उस सिहरन के बाद उसे अपना हाथ खाली-

डालो-सा लगता। मन होता कि हाथ में कसने के लिए एक और हाथ उसके पास हो—मिसी का पतली और चुभती उँगलियों वाला हाथ। कि हाथ के अलावा मिसी का पूरा शरीर भी पास में हो—दुबहरा, पर भरा हुआ शरीर—जिसके एक-एक हिस्से से अपने सिर और होंठो को रगड़ता हुआ वह अपने नाक-कान-गालों से उसकी साँसों का शब्द और उतार-चढ़ाव महसूस कर सके। पर मिसी वहाँ नहीं थी—और उसके हाथ ही नहीं, पूरा अपना-आप खाली था। उसकी आँखें दर्द कर रही थीं और कनपटियों की नसें फड़क रही थीं। अगर वह रात रात न होकर सुबह होती—एक दिन पहले की सुबह—वह अभी मिसी से बात करके उससे अलग न हुआ होता, और स्टैण्ड पर आकर अभी स्कूटर में न बैठा होता...!

कोई चीज़ हलक में चुभ रही थी—एक नोक की तरह। वह बार-बार थूक निगलकर उस चुभन को मिटा लेना चाहता। कभी-कभी उसे लगता कि किसी हाथ ने उसका गला दबोच रखा है और यह चुभन गलेपर कसते नाखूनों की है। तब वह जैसे अपने को उन हाथों से छुड़ाने के लिए छटपटाने लगता। उसे अपने अन्दर से एक हौलनाक-सी आवाज़ सुनाई देती—अपनी तेज़ चलती साँसों की आवाज़। रात तब दिन में और कमरा सड़क में घुल-मिल जाता और वह अपने को फूली साँस और अकड़ी पिण्डलियों से बेतहाशा सड़क पर भागते पाता। सड़क है—सिर्फ़ सलेटी सड़क—जिसका कोलतार जहाँ-तहाँ से पिघल रहा है। उसपर, जैसे उससे आगे-आगे, दो पैर हैं—उसके अपने पैर। जूते के फीते खुले हैं। पतलून के पायँचे जूते में अटक-अटक जाते हैं। पर वह सरपट भाग रहा है—जैसे जूते और पायँचों के ऊपर-ऊपर से। आगे एक-दूसरे से सटकर मकान, हैं नालियाँ हैं, लोग हैं। सब उसके रास्ते में हैं—पर कोई भी, कुछ भी, उसके रास्ते में नहीं है। सिर्फ़ सड़क है, वह है, और भागना है...।

आँख खुल जाती, तो बाहर बिजली चमकती दिखाई देती। फिर मुँद जाती, तो कोई चीज़ अन्दर कौंधने लगती।. एक जीने की सीढ़ियों ने उसे रस्सियों की तरह लपेट रखा है। एक तेज धार का चाकू उन रस्सियों को काटता आता है। उसके पास आने से पहले ही उसकी धार जैसे शरीर में चुभने लगती है। यह उसकी पीठ है...पीठ नहीं, छाती है। चाकू की

नोक सीधी उसकी छाती की तरफ़...नहीं, गले की तरफ़...आ रही है। वह उस नोक से बचने के लिए अपना सिर पीछे हटा रहा है...पर पीछे आसमान नहीं, दीवार है। वह कोशिश कर रहा है कि उसका सिर दीवार में गड़ जाये...दीवार के अन्दर छिप जाये। पर दीवार दीवार नहीं, रस्सियों का जाल है, और जाल के उस तरफ़...फिर वही चाकू की नोक है। जाल टूट रहा है। सीढ़ियाँ पैरों के नीचे से फिसल रही हैं। क्या वह किसी तरह सीढ़ियों में—रस्सियों में—उलझा रहकर अपने को नहीं बचा सकता ?

आँख फिर खुल जाती, तो उसे तेज़ प्यास महसूस होती। पर जब तक वह उठने और पानी पीने की बात सोचता, तब तक आँख फिर झपक जाती।

चाप् चाप् चाप्...।

जूते की आवाज फिर दरवाज़े के पास आ गयी। वह कुरसी पर सीधा हो गया।

"आप तैयार हैं ?" सब-इन्स्पेक्टर ने अन्दर आकर पूछा।

उसने सिर हिलाया। उसे लग रहा था कि रात से अबतक उसने पानी पिया ही नहीं।

"तो अपनी कुरसी ज़रा तिरछी कर लीजिए और बाहर की तरफ़ देखते रहिए। हम लोग अभी उसे लेकर आ रहे हैं," कहकर सब-इन्स्पेक्टर चला गया।

चाप् चाप् चाप्...।

उसे लगा कि उसके हाथों की उँगलियाँ काँप रही हैं—ऐसे जैसे वे हाथों से ठीक से जुड़ी न हों।

साथ के कमरे में एक आदमी रो रहा था—धौल-धप्पे से कोई चीज़ उससे क़बुलवायी जा रही थी।

क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर जैसे दीवार से थोड़ा आगे को हट आयी थी—उसके और ज़मीन के बीच का फ़ासला भी अब पहले जितना नहीं लग रहा था।

चाप् चाप् चाप्—यह कई पैरों की मिली-जुली आवाज़ थी। साथ के कमरे में पिटाई चल रही थी : "बोल हरामज़ादे, तू किस रास्ते से घुसा

घर के अन्दर ?" और इसके जवाब में आती आवाज़ : "नहीं, मैं नहीं
। था। मैं तो उस घर की तरफ़ गया भी नहीं था. . .।"

चार सिपाही कमरे के बाहर आ गये थे, और उनके बीच था वही दार—उसी तरह लुंगी के साथ मलमल का लम्बा कुरता पहने। हथ-ी के बावजूद उसके हाथ बँधे हुए नहीं लग रहे थे।

पलभर के लिए वाशी को लगा जैसे उसे उस आदमी का नाम भूल ा है। कल दिन में कितनी ही बार, कितने ही लोगों के मुँह से, वह नाम ा था। जिस किसी से बात हुई थी, वह उस आदमी को पहले से ही जानता ा। अभी कुछ ही देर पहले उसने वह नाम अपनी हथेली पर लिखा था। ा नाम था वह ?

दरवाज़े के पास आकर वे लोग रुक गये थे—जैसे किसी चीज़ का ा करने के लिए। थानेदार और सब-इन्स्पेक्टर में-से कोई उनके साथ ही था।

"कहाँ चलना है? इस तरफ़ ?" कहता हुआ सरदार उसी दरवाज़े ी तरफ़ बढ़ आया। अब वे दोनों आमने-सामने थे। चारों सिपाही पीछे ुपचाप खड़े थे।

वाशी को अचानक उसका नाम याद हो आया। मस्तासिंह। सुबह ाम: सभी अख़बारों में यह नाम पढ़ा था। तब उसे इस आदमी की सूरत ाद नहीं आ रही थी। सोच रहा था कि उसे देखकर पहचान भी पायेगा या नहीं। पर अब वह सामने था, तो उसकी सूरत बहुत पहचानी हुई लग रही थी। जैसे कि वह उसे एक मुद्दत से जानता हो।

वह आदमी सीधी नज़र से उसकी तरफ़ देख रहा था—जैसे कि उसका चेहरा आँखों में बिठा लेना चाहता हो। पर वाशी अपनी आँखें हटाकर दूसरी तरफ़ देखने की कोशिश कर रहा था—खिड़की की तरफ़। खिड़की के बाहर पेड़ के पत्ते हिल रहे थे। पेड़ की डाल पर एक कौआ पर फड़फड़ा रहा था।

वह एक लम्बा वक़्त था—ख़ामोश वक़्त—जिसमें कि उसके कान ही नहीं, गाल भी दहकने लगे। पैर में तेज़ खुजली उठ रही थी, फिर भी उसने उसे दूसरे पैर से दबाया नहीं। उसकी आँखें खिड़की से हटकर

जमीन में धँस गयी और तब तक धँसी रही जब तक कि वह वक़्फ़ा गुज़र नहीं गया। उन लोगों के चले जाने के कई क्षण बाद उसने आँखें दरवाज़े की तरफ़ मोड़ीं। तब थानेदार अहाते में खड़ा सब-इन्स्पेक्टर को डाँट रहा था, "मैंने तुमसे कहा नहीं था कि उसे यहाँ रोकना नहीं, चुपचाप दरवाज़े के पास से निकालकर ले जाना ?"

सब-इन्स्पेक्टर अपनी सफ़ाई दे रहा था कि क़सूर उसका नहीं, सिपाहियों का है—उन लोगों ने, लगता है, बात ठीक से समझी नहीं।

थानेदार माफ़ी माँगता हुआ उसके पास आया, और आश्वासन देकर कि उसे फिर भी डरना नहीं चाहिए, वे लोग उसकी हिफ़ाज़त करेंगे, बोला, "उसे पहचान लिया है न, आपने ? यही आदमी था न जिसने आप पर चाकू चलाना चाहा था ?"

वह भी कुरसी से उठ खड़ा हुआ। उठते हुए उसे लगा कि उसके घुटनों में खून जम गया है। उसे जैसे सवाल ठीक से समझ ही नहीं आया—वे जैसे अलग-अलग शब्द थे जिन्हें मिलाकर उसके दिमाग़ में पूरा वाक्य नहीं बन पाया था।

"यह वही आदमी था न ?"

उसके पैरों में पसीना आ रहा था। बग़लों में भी। साथ के कमरे में ठुकाई करते हुए पूछा जा रहा था, "तू नहीं था, तो कौन था कुत्ते के बीज ? सीधे से बता दे—क्यों अपनी पसलियाँ तुड़वाता है ?" जवाब में मार खानेवाला न जाने क्या कहने की कोशिश कर रहा था।

अब तक वाक्य उसके दिमाग़ में स्पष्ट हो गया था। जो सवाल पूछा गया था, उसका जवाब उसे 'हाँ' में देना था। यह बात पहले से ही तय थी—तब से ही जब कि उसे उस कमरे में लाया गया था। वह आदमी वही है, यह सब जानते थे—वह भी, थानेदार भी और दूसरे लोग भी। फिर भी उसके 'हाँ' कहने पर ही सब कुछ निर्भर करता था।

उसने कमीज के निचले हिस्से से बग़लों का पसीना पोंछ लिया। फिर उसे ख़याल आया कि वह दो दिन से नहाया नहीं है, और कि मिन्नी हमेशा उसे सुबह नहाकर न आने के लिए ताना देती है। आज सुबह मिन्नी ठीक

वक़्त पर वहाँ पहुँची होगी। उसके वहाँ न मिलने से उसने जाने क्या सोचा होगा !

उसे यह भी लग रहा था कि वह आने कोट-टाई पहन कर क्यों आया है—उसे क्या थाने में नौकरी के लिए दरख़्वास्त देनी थी ?

"आप क्या सोच रहे हैं ?" थानेदार ने पूछा, "आपने उस आदमी को पहचाना नहीं ?"

यह एक नया विचार था। अगर सचमुच उसने उस आदमी को न पहचाना होता ?...और पहचानने के बाद भी इस वक़्त अगर वह कह दे कि उसने नहीं पहचाना ?

पर इस विचार के दिमाग में ठीक से बनने के पहले ही, पहले की तय की बात उसके मुँह से निकल गयी, "हाँ, वही आदमी है यह।"

जवाब सुनते ही थानेदार व्यस्ततापूर्वक वहाँ से हट गया। सब-इन्स्पेक्टर पल-भर उसकी तरफ देखता रहा, फिर यह कहकर कि 'अब आप घर जा सकते हैं। चाकू, रानाक्स के लिए, आपके पास वहीं भेज दिया जायेगा,' वह भी वहाँ से चला गया।

वह अपने में उलझा हुआ थाने से बाहर आया। बाहर की तेज-चुभती धूप में उसे अपना-आप बहुत असुरक्षित और नंगा-सा लगा। लगा, जैसे वह अपना बहुत कुछ उस कमरे में छोड़ आया हो—कल तक का सारा संघर्ष, मिस्री का चेहरा और आगे की सब योजनाएँ। फुटपाथ, सड़क और खम्भे पहले कभी उसे इतने सपाट और नंगे नहीं लगे थे। सामने जो पहली इमारत नजर आ रही थी, और जिसकी ओट में जाकर वह अपने को कुछ ढका हुआ महसूस कर सकता था, वह भी सौ गज से कम फासले पर नहीं थी। खुले में, चारों तरफ से सब को दिखाई देते हुए, उतना फासला तय करना उसे असम्भव लग रहा था। 'अब मैं उस इलाक़े में नहीं रह पाऊँगा,' उसने सोचा। 'और यह घर छोड़ देना पड़ा, तो और कहाँ रहूँगा ? नौकरी तो अबतक मिली नहीं...।'

उसने एक असहाय नजर से चारों तरफ देख लिया। एक खाली टैक्सी पीछे से आ रही थी। उसने जेब के पैसे गिने और हाथ देकर टैक्सी को रोक लिया। फिर चोर नजर से आस-पास देखकर उसमें बैठ गया। टैक्सीवाले

और फिर वह धागा लेकर उस शीशे की तरफ़ बढ़ा जिसमें खिड़की के बाहर सितारे खिले थे, जिसका कहीं ओर छोर कोई सिरा दिखाई न दे।

पेड़ से लटकती सड़क अब नहीं थी। वह उसी तरह झुके-झुके काँपती उँगलियों से ऊन का गोला खोलने लगा।

मवाली

स लड़के का परिचय केवल इतना ही है कि वह शाम के वक़्त चौपाटी के मैदान में जमा होने वाली भीड़ में घूम रहा था। चौपाटी का मैदान काफ़ी खुला है, और जब समुद्र भाटे पर हो, तो और भी खुला हो जाता है। शाम के वक़्त वहाँ पर सब तरह के लोग जमा होते हैं—वे जो वहाँ तफ़रीह के लिए आते हैं, और वे जो वहाँ आने वालों के लिए तफ़रीह का सामान प्रस्तुत करते हैं, और वे जो दूसरों को तफ़रीह करते देखकर लुत्फ़ ले लेते हैं। वहाँ धार्मिक प्रवचनों से लेकर आदम और हौवा की परम्परा के पालन तक, सभी कुछ होता है। अँधेरे और रोशनी में इतना सुन्दर समझौता और कहीं नहीं होगा जितना चौपाटी के मैदान में है।

और वह लड़का नंगे पाँव, नंगे सिर, सिर्फ़ घुटनों तक की लम्बी-मैली क़मीज़ पहने, वहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे की तरफ़ चल रहा था। एक जगह एक नेता का भाषण समाप्त हुआ था, और मज़दूर शामियाना उखाड़ रहे थे। ज़मीन पर फैले शामियाने पर से गुज़रते हुए, लड़के ने रुककर चारों तरफ़ देखा, और हाथ उठाकर भाषण देने की मुद्रा में गले से कुछ अस्पष्ट आवाज़ें पैदा कीं। जब एक मज़दूर उसे हटाने के लिए उसकी तरफ़ लपका, तो वह उसे जीभ दिखाकर भाग खड़ा हुआ। भागते हुए वह एक ऐसे आदमी से टकरा गया, जो ज़मीन पर लेटकर कराहता हुआ भीख माँग रहा था। वह आदमी ऊँची आवाज़ में उसे गाली देने लगा। लड़के ने उसकी तरफ़ होंठ बिचका दिये, और एक पत्थर को पैर से ठोकर लगाकर दूर उड़ा दिया। फिर उसकी नज़र मलाबार हिल की तरफ़ से आती बसों और कारों की पंक्ति पर स्थिर हो गयी। उधर देखते हुए अनायास उसके पैरों का रुख़ बदल गया और वह दूसरी दिशा में चलने लगा।

उसकी उम्र तेरह या चौदह साल की होगी। रंग साँवला था और नक़्श भी ख़ास अच्छे नहीं थे। मगर उसकी आँखों में अजब बेबाकी और आवारगी थी। आँखें सड़क की तरफ़ रहने से वह एक जगह रेत में पड़े

अड़े और पत्थर से ठोकर लग गया, जिससे उसका घुटना थोड़ा छिल गया। उसने छिले हुए घुटने पर थोड़ी रेत डाल ली, और थोड़ी-सी रेत अपनी हथेली पर लेकर उसे फूंक से उड़ा दिया।

तमाम वक्त दूर से समुद्र की उफनती लहरों का शब्द सुनाई दे रहा था। वह कुछ देर लहरों को किनारे की तरफ आते, और एक फेनिल लकीर छोड़कर वापस जाते देखता रहा। हर लहर के बाद दूसरी लहर और आगे तक बढ़ आती थी। पश्चिमी क्षितिज के पास बादलों के दो काले सुरमई टुकड़े, समुद्र से निकले बड़े-बड़े मगरमच्छों की तरह, एक-दूसरे से उलझे हुए थे। लड़का उन मगरमच्छों को एक-दूसरे में विलीन होते देखता रहा। फिर वह बैठकर रेत में से सीपियां बटोरने लगा। केकड़े और इसी तरह के दूसरे जन्तु उछलते हुए समुद्र की तरफ से आते थे और पास से निकल जाते। लड़का टूटी हुई सीपियों को दूर फेंक देता, और साबुत सीपियों में से जो उसे खूबसूरत लगतीं, उन्हें कमीज से साफ करके जेब में डाल लेता। अंधेरा धीरे-धीरे गहरा हो रहा था, इसलिए सीपियां ढूंढना कठिन हो रहा था। लड़का एक बड़ी-सी सुन्दर सीपी को, जो एक ओर से टूटी हुई थी, हाथ में लेकर अनिश्चित दृष्टि से देखता रहा कि उसे जेब में रख लेना चाहिए या नहीं। पर उसकी आंख ने टूटी हुई सीपी को स्वीकार नहीं किया। उसने उसे वहीं रेत पर रख दिया और उठ खड़ा हुआ। उसकी आंखें कई पल गरजती हुई लहरों पर टिकी रहीं, फिर उधर को मुड़ गईं जिधर चौराहे की बत्ती का रंग लाल से पीला और पीले से हरा हो रहा था, और लाल रंग की बसें घरघराती हुई एक-दूसरी के पीछे दौड़ रही थीं।

एक बच्चा अपनी मां की उंगली पकड़े नाचता हुआ आ रहा था। वह उसकी तरफ़ देखकर मुस्कराया। एक गुब्बारे वाले के पास से निकलते हुए उसने उसके गुब्बारों को छेड़ दिया। गुब्बारे वाले ने घूमकर गुस्से से उसे देखा, तो उसने उसकी तरफ़ मुंह करके जोर की सीटी बजाई और हाथ से, जेब में भरी हुई सीपियों का वजन और फैलाव महसूस करता हुआ, तेज-तेज चलने लगा।

सड़क के उस पार, चरनी रोड स्टेशन पर, एक लोकल गाड़ी मैरीन

ल्ड्स से आकर रुकी थी, जो सीटी देकर अब ग्रांट रोड की तरफ़ चल दी। कुछ ही देर में गाड़ी से उतरे हुए लोगों की भीड़ चरनी रोड के पुल पर आ गयी। भइया लोग, दूध बेचकर खाली पीपे लिये आ रहे थे। कुछ छोटी युवतियाँ एक-दूसरी को छेड़ती हुई पुल की सीढ़ियाँ उतर रही थीं। लड़के की आँखें काफ़ी देर पुल के उस हिस्से पर लगी रहीं, जहाँ से हर पल नये-नये चेहरे प्रकट होकर पास आने लगते थे, और कुछ ही देर में सीढ़ियों से उतरकर अदृश्य हो जाते थे।

"सिर्‌र्‌र्, सिर्‌र्‌र्," लड़के ने मुँह में दो उँगलियाँ डालकर आवाज़ पैदा की और मुसकराकर चारों तरफ़ देखा कि लोगों पर उस आवाज़ की क्या प्रतिक्रिया हुई है। यह देखकर कि उसकी आवाज़ की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं गया, उसने बाँहें फैला लीं, और तनकर चलने लगा। काले पत्थर के बुत के पास पहुँचकर उसने उसकी दो परिक्रमाएँ लीं, और भागता हुआ वहाँ पहुँच गया जहाँ एक परिवार के छः-सात लोगों में एक गेंद को ऊँची-से-ऊँची उछालने की प्रतियोगिता चल रही थी। वह अपने लच्छे बालों को खुजलाता और बीच-बीच में बायीं पिंडली को दायें पैर से मलता हुआ, उनका खेल देखने लगा। एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की, जिसने अपना नीला दोपट्टा कसकर कमर से लपेट रखा था, गेंद के साथ ऊपर को उछलती, तो लड़के की एड़ियाँ भी ज़मीन से तीन-चार इंच ऊपर उठ जातीं।

"ए लड़के!" किसी ने पास से उसे आवाज़ दी।

उसने घूमकर देखा। एक पारसी अपने सोये हुए बच्चे को कंधे से लगाये खड़ा था और उसे हाथ के इशारे से बुला रहा था। उसने होंठ गोल करके एक बार पारसी की तरफ़ देख लिया, फिर खेल देखने में व्यस्त हो गया।

"ए लड़के इधर आ," पारसी ने फिर आवाज़ दी। "इस बच्चे को उठाकर सीतल बाग तक ले चल। एक आना मिलेगा।"

"खाली नहीं है," लड़के ने सिर और हाथ हिलाकर मना कर दिया।

"साले का दिमाग़ तो देखो," पारसी बड़बड़ाया। "खाली नहीं है!... चल आ इधर, दो आना मिलेगा।"

"पानी गर्म है," लड़के ने और भी बेरुखी के साथ कहा, और जेब से एक सीपी निकालकर उसे हवा में उछाला और दबोच लिया।

"अच्छा लड़का है," आदमी ने अपनी पत्नी से, जो गरदन एक तरफ़ को झुकाये, ढीले-ढाले ढंग से खड़ी थी, कहा। फिर बच्चे को उठाये वह सड़क की तरफ़ चल दिया।

गेंद उछालने की प्रतियोगिता समाप्त हो गयी थी। वह लड़की अब अकेली ही बाँह घुमा-घुमाकर गेंद को पीछे की तरफ़ उछाल रही थी। एक बार बाँह घुमाने में गेंद ज़्यादा घूम गई और तेज़ी से समुद्र की तरफ़ चल पड़ी। लड़की के मुँह से हल्की-सी 'ओह' निकली। तभी वह लड़का तेज़ी से गेंद के पीछे भाग खड़ा हुआ। इससे पहले कि गेंद सामने से आती लहर की ओट में चली जाती, उसने टखने-टखने पानी में जाकर उसे पकड़ लिया—हालांकि अँधेरा इतना हो चुका था कि गेंद और पत्थर में फ़र्क़ कर पाना मुश्किल था। लड़का गीली गेंद को ज़रा-ज़रा उछालता हुआ, उन लोगों के पास ले आया।

"बड़ी तेज आँख है तेरी!" भारी गरदन वाले अधेड़ व्यक्ति ने, जो उस परिवार का पिता था, गेंद उसके हाथ से लेते हुए गिलगिली हँसी के साथ कहा।

"किस तरह चिमगादड़ की तरह लपका था!" नीले दोपट्टे वाली लड़की बोली। इन बातों के उत्तर में लड़के के गले से सिर्फ़ खुश्क-सी हँसी का स्वर सुनाई दिया।

"चल, हमारा सामान उठाकर ले चल," सूखी हड्डियों वाली स्त्री, जो शायद उस लड़की की माँ थी, अहसान जताती हुई बोली।

"चलेगा?" पुरुष ने उसे खामोश देखकर झिड़कने के स्वर में पूछ लिया।

"चलेगा," लड़के ने उत्तर दिया।

"तो यह दरी तह कर ले और बाक़ी सामान समेटकर टोकरी में रख ले," उस व्यक्ति ने दरी पर रखी प्लेटों और चम्मचों की तरफ़ इशारा किया।

लड़के ने एक झिझक के साथ बिखरे हुए सामान को देखा, एक

निगाह लड़की पर डाली, और झुककर वे चीज़ें इकट्ठी करने लगा।

"सब चीज़ें ठीक से रख, और जा पहले प्लेटें और चम्मच धो ला," स्त्री ने उसे आदेश दिया।

उसने जूठी प्लेटें और चम्मच इकट्ठे किये और समुद्र की तरफ चला गया। वहाँ उसने उन सबको रेत से मलकर साफ किया और अच्छी तरह अपनी कमीज़ से पोंछ लिया। एक प्लेट लौटती लहर के साथ बह चली, तो उसने झपटकर उसे पकड़ लिया, और फिर से साफ करने लगा। जब उसे तसल्ली हो गयी कि सब चीज़ें ठीक से चमक गयी हैं, तो वह सीटी बजाता हुआ उन्हें उन लोगों के पास ले आया।

"इतनी देर क्या करता रहा वहाँ ?" स्त्री ने आते ही उसे झिड़क दिया। "हम लोग रात तक यहीं बैठे रहेंगे क्या ? अब जल्दी कर !"

वह बैठकर प्लेटों को टोकरी में रखने लगा। स्त्री बिल्कुल उसके पास आकर खड़ी हो गयी, और बोली, "सब चीज़ें गिनकर रखना। प्लेटें पूरी छः हैं न ?"

लड़के ने प्लेटें गिनीं और सिर हिलाया।

"और चम्मच ?" स्त्री झुककर देखती हुई बोली। "चम्मच तो मुझे पाँच नज़र आ रही हैं।"

लड़के ने उन्हें गिना और कहा, "हाँ, चम्मच पाँच ही हैं।"

"पाँच कैसे है ?" स्त्री कुछ सख्त स्वर में बोली, "पूरी छः हैं। एक चम्मच कहाँ छोड़ आया है ?"

"छोड़ कहाँ आया होगा, जेब में रख ली होगी। इसकी जेब में देखो," पुरुष ने पास आते हुए कहा।

लड़के का हाथ सहसा अपनी जेब पर चला गया, और सीपियों के फैलाव को छूकर, उनके बचाव के लिए वहीं रुका रहा।

"निकाल चम्मच, जेब पर हाथ क्यों रखे हुए है ?" पुरुष ने उसे डाँटा। लड़का सहमा-सा टोकरी के पास से उठकर दो कदम पीछे हट गया।

"मैंने चम्मच नहीं ली," उसने कमज़ोर आवाज़ में कहा। "मुझे नहीं पता वह चम्मच कहाँ है।"

"तुझे नहीं तो तेरे बाप को पता है ?" कहते हुए उस व्यक्ति ने लड़के

है, लेकिन मैं अपना टिक्का लिये बिना नहीं छोड़ूंगा। तू मार, और मार...।"

तीन-चार व्यक्तियों के रोकने पर वह व्यक्ति मारने से हटा। उसकी पत्नी लोगों को सुनाकर कहने लगी, "इतना-सा है, मगर है पक्का चोर। हमने इसे सामान उठाने के लिए तय किया और सामान टोकरी में रखने को कहा। पर हमारे देखते-देखते ही इसने एक चम्मच गायब कर दी पूछा, तो भाग खड़ा हुआ। अब इनकी बांह पर दांत काट रहा था। दुनिया में ऐसे-ऐसे नालायक भी होते हैं!"

और वह व्यक्ति रोकने वालों से कह रहा था, "मैंने तो इसे कुछ ठोकरें ही लगायी हैं। ऐसे हरामी को तो गोली से उड़ा देना चाहिए। साले एक तो चोरी करते हैं, ऊपर से मवालीगिरी करके दिखाते हैं।"

लड़का रो रहा था। दो व्यक्तियों की पकड़ में छटपटाता हुआ कह रहा था, "मेरा टिक्का मेरी मां ने मुझे दिया था। मेरी मां मर चुकी है। अब मुझे वह टिक्का कहां से मिलेगा? मैं इससे अपना टिक्का लेकर रहूंगा। या यह मेरी जान ले ले, या मैं इसकी जान ले लूंगा।" और वह पकड़ से छूटने के लिए और भी संघर्ष करने लगा।

उधर वह व्यक्ति कह रहा था, "मैं कहता हूं इसे हवालात में दे देना चाहिए। इसकी तलाशी ली, तो इसकी जेब से तांबे का एक तावीज़-सा निकला। वह भी साले ने किसी का उठाया होगा। अब भी वह यहीं कहीं पड़ा है, पर उसके बहाने यह खून करने पर उतारू हो रहा है!

"छोड़िए भाई साहब," कोई उसे समझाता हुआ बोला। "आप शरीफ़ आदमी हैं। आप क्यों इसे मुंह लगाते हैं? चोरी करना और जेब काटना तो इन लोगों का धन्धा ही है। आपके साथ बाल-बच्चे हैं, आप चलिए यहां से।"

पास से गुज़रते एक व्यक्ति ने दूसरे से पूछा, "क्या बात हुई है यहां?"

"पता नहीं," उसे उत्तर मिला।" एक लड़के ने कुछ चोरी-ओरी की है। उसी के लिए उसे मार-आर पड़ रही है।"

"बम्बई में इन लोगों के मारे नाक में दम है," उस व्यक्ति ने कहा।

"चौपाटी तो इन लोगों का खास अड्डा है!" दूसरे ने समर्थन किया।

"देखो कैसे गालियां बक रहा है!"

"बकने दीजिए। आप क्यों अपना वक्त खराब करते हैं ?"

वह व्यक्ति दूसरों के कहने-कहाने से स्त्री और बच्चों को साथ लेकर वहाँ से चल दिया। चलते हुए वह दूसरों को समझाने लगा कि ऐसे लड़कों के साथ सख्ती का बर्ताव करना क्यों जरूरी है। दो व्यक्ति अब भी लड़के को पकड़े हुए थे, और वह उनके हाथ से छूटने की चेष्टा करता हुआ सब को गालियाँ दे रहा था। लोग उसे खींचते हुए दूसरी तरफ ले गये। जब उसे छोड़ा गया, तो वह थोड़ी दूर जाकर और ज़ोर से गालियाँ देने लगा। फिर वह सिसकियाँ भरता हुआ रेत पर औंधा पड़ गया।

चौपाटी के अँधेरे भागों में अँधेरा पहले से गहरा हो गया था। मैदान में टहलने वाले लोगों की संख्या बहुत कम हो गयी थी। कहीं-कहीं कोई इक्का-दुक्का आदमी ही नजर आता था। दूर कोने में एक आदमी एक लड़की की कमर में बाँह डाले बेंच पर बैठा उसे चूम रहा था। धीरे-धीरे समुद्र की लहरों और किनारे की बेंचों के बीच का फासला कम हो रहा था। 'स्याश् शी' की आवाज के साथ हर लहर दूसरी लहर से आगे बढ़ जाती थी। दूर क्षितिज के पास मछुआ-नावों की बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। टिट् टिट् टिट्...टिट् टिट् टिट्...टिट् टिट् टिट्! वातावरण में तरह-तरह की आवाजें फैली थीं। अरब सागर की हवा 'हुआँ-हुआँ' करती सामने की इमारतों से टकरा रही थी।

काफी देर पड़े रहने के बाद लड़का रेत से उठ खड़ा हुआ, और आँखों से ज़मीन को टटोलता घिसटते पैरों से चलने लगा। सहसा उसका पैर एक नारियल पर से उलटा हो गया। उसने नारियल को कसकर गाली दी और ज़ोर की एक ठोकर लगायी। नारियल लुढ़कता हुआ समुद्र की लहरों की तरफ चला गया। उसने पास जाकर उसे दूसरी ठोकर लगायी। नारियल सामने से आती लहर में खो गया। उस लहर के लौटते-लौटते उसे नारियल फिर दिखाई दे गया। एक और लहर उमड़ती आ रही थी। इसलिए पास न जाकर उसने वहीं से एक पत्थर नारियल को मारा, और साथ भरपूर गाली दी, "तेरी माँ को..."

और फिर वह सामने से आती हर लहर को ज़ोर-ज़ोर से पत्थर मारने लगा, "तेरी माँ को...तेरी बहन को...!"

ले, लेकिन मैं अपना टिक्का लिये बिना नहीं छोड़ूँगा। तू मार, और मार...।"

तीन-चार व्यक्तियों के रोकने पर वह व्यक्ति मारने से हटा। उसकी पत्नी लोगों को सुनाकर कहने लगी, "इतना-सा है, मगर है पक्का चोर। हमने इसे सामान उठाने के लिए लगा लिया और सामान टोकरी में रखने को कहा। पर हमारे देखते-देखते ही इसने एक चम्मच गायब कर दी। पूछा, तो नाराज़ हुआ। अब उनकी बांह पर दांत काट रहा था। दुनिया में ऐसे-ऐसे नालायक़ भी होते हैं!"

और वह व्यक्ति रोकने वालों से कह रहा था, "मैंने तो इसे कुछ ठोकरें ही लगायी हैं। ऐसे हरामी को तो गोली से उड़ा देना चाहिए। साले एक तो चोरी करते हैं, ऊपर से मवालीगीरी करके दिखाते हैं।"

लड़का रो रहा था। दो व्यक्तियों की पकड़ में छटपटाता हुआ कह रहा था, "मेरा टिक्का मेरी मां ने मुझे दिया था। मेरी माँ मर चुकी है। अब मुझे वह टिक्का कहां से मिलेगा? मैं इससे अपना टिक्का लेकर रहूंगा। या यह मेरी जान ले ले, या मैं इसकी जान ले लूंगा।" और वह पकड़ से छूटने के लिए और भी संघर्ष करने लगा।

उधर वह व्यक्ति कह रहा था, "मैं कहता हूं इसे हवालात में दे देना चाहिए। इसकी तलाशी ली, तो इसकी जेब से तांबे का एक तावीज़-सा निकला। यह भी साले ने किसी का उड़ाया होगा। अब भी वह यहीं कहीं पड़ा है, पर उसके बहाने यह ख़ून करने पर उतारू हो रहा है!

"छोड़िए भाई साहब," कोई उसे समझाता हुआ बोला। "आप शरीफ़ आदमी हैं। आप क्यों इसे मुंह लगाते हैं? चोरी करना और जेब काटना तो इन लोगों का धन्धा ही है। आपके साथ बाल-बच्चे हैं, आप चलिए यहां से।"

पास से गुज़रते एक व्यक्ति ने दूसरे से पूछा, "क्या बात हुई है यहाँ?"

"पता नहीं," उसे उत्तर मिला।" एक लड़के ने कुछ चोरी-ओरी की है। उसी के लिए उसे मार-आर पड़ रही है।"

"बम्बई में इन लोगों के मारे नाक में दम है," उस व्यक्ति ने कहा।

"चौपाटी तो इन लोगों का ख़ास अड्डा है!" दूसरे ने समर्थन किया।

"देखो कैसे गालियाँ बक रहा है!"

"बकने दीजिए। आप क्यों अपना वक़्त खराब करते हैं?"

वह व्यक्ति दूसरों के कहने-कहाने से स्त्री और बच्चों को साथ लेकर वहाँ से चल दिया। चलते हुए वह दूसरों को समझाने लगा कि ऐसे लड़कों के साथ सख्ती का बर्ताव करना क्यों ज़रूरी है। दो व्यक्ति अब भी लड़के को पकड़े हुए थे, और वह उनके हाथ से छूटने की चेष्टा करता हुआ सब को गालियाँ दे रहा था। लोग उसे खींचते हुए दूसरी तरफ़ ले गये। जब उसे छोड़ा गया, तो वह थोड़ी दूर जाकर और ज़ोर से गालियाँ देने लगा। फिर वह सिसकियाँ भरता हुआ रेत पर औंधा पड़ गया।

चौपाटी के अँधेरे भागों में अँधेरा पहले से गहरा हो गया था। मैदान में टहलने वाले लोगों की संख्या बहुत कम हो गयी थी। कहीं-कहीं कोई इक्का-दुक्का आदमी ही नज़र आता था। दूर कोने में एक आदमी एक लड़की की कमर में बाँह डाले बेंच पर बैठा उसे चूम रहा था। धीरे-धीरे समुद्र की लहरों और किनारे की बेंचों के बीच का फ़ासला कम हो रहा था। 'स्प्लाश्' की आवाज़ के साथ हर लहर दूसरी लहर से आगे बढ़ आती थी। दूर क्षितिज के पास मछुआ-नावों की बत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। टिट् टिट् टिट् ...टिट् टिट् टिट् ...टिट् टिट् टिट्! वातावरण में तरह-तरह की आवाज़ें फैली थीं। अरब सागर की हवा 'हुआँ-हुआँ' करती सामने की इमारतों से टकरा रही थी।

काफ़ी देर पड़े रहने के बाद लड़का रेत से उठ खड़ा हुआ, और आँखों में ज़मीन को टटोलता घिसटते पैरों से चलने लगा। सहसा उसका पैर एक नारियल पर से उलटा हो गया। उसने नारियल को कसकर गाली दी और ज़ोर की एक ठोकर लगायी। नारियल लुढ़कता हुआ समुद्र की लहरों की तरफ़ चला गया। उसने पास जाकर उसे दूसरी ठोकर लगायी। नारियल सामने से आती लहर में खो गया। उस लहर के लौटते-लौटते उसे नारियल फिर दिखाई दे गया। एक और लहर उमड़ती आ रही थी। इसलिए पास न जाकर उसने वहीं से एक पत्थर नारियल को मारा, और साथ भरपूर गाली दी, "तेरी माँ की..."

और फिर वह सामने से आती हर लहर को ज़ोर-ज़ोर से पत्थर मारने लगा, "तेरी माँ की... तेरी बहन की...!"

भी ईर्ष्या थी कि [illegible] अभी तक भी सुन्दर थी, और तीन बच्चों की माँ होकर भी अभी लड़की-सी नज़र आती थी। दूसरी तरफ़ उसकी अपनी पत्नी शान्ति थी, जो अभी एक बच्चे की माँ थी, पर लगता था उसकी जवानी कब की मुरझा गयी है—सुन्दर तो ख़ैर वह कभी थी ही नहीं। जब शान्ति संतो को कोई आदेश देती, तो [illegible] संतराम को उसका आदेश देना अपना अपमान लगता, हालाँकि शान्ति के शिकायत करने पर कि संतो बात-बात में उसकी अवहेलना करती है, वह मुँह से उसके अधिकार का समर्थन कर दिया करता। पर कभी शान्ति संतो के सामने ही उसकी शिकायत करने लगती, तो वह निष्पक्ष मध्यस्थ की तरह कहता, "पता नहीं तुम लोग आपस में झगड़ती क्यों रहती हो? यह सरकारी काम है, और हम सब का साझा फ़र्ज़ है। हमें आपस में मेल-जोल के साथ रहना चाहिए।"

संतो के पास से निकलकर संतराम अपने क्वार्टर के पास पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ शान्ति किसी वजह से बच्चे पर झुँझला रही है। उसका ढीला-ढाला शरीर, फिर उससे भी ढीले-ढाले कपड़े, और उस पर यह झुँझलाहट का भाव देखकर संतराम का अपना मन झुँझलाहट से भर गया। उसका मन हुआ कि उसे डाँट दे, पर फिर कुछ सोचकर वह आगे बढ़ गया। पर सड़क पर आकर भी उसकी झुँझलाहट कम नहीं हुई। उसने बाबू के लिए कैप्स्टन की डिबिया ख़रीदी और एक लैंप की डिबिया अपने लिए ले ली। उसमें से एक सिगरेट सुलगाये हुए वह रेस्ट-हाउस की तरफ़ लौटा। चलते हुए उसके दिमाग़ में उन दिनों की धुँधली तसवीरें उभरने लगीं जब वह दिल्ली में बाबू गनपतलाल के थिएटर में काम करता था। वहाँ उसका काम बिजली की फ़िटिंग करने का था, पर दो-एक बार बाबू गनपतलाल ने उसे पार्ट करने का मौका भी दे दिया था

छह महीने तनख़्वाह नहीं मिलती
हुआ, उस दिन उसे यही लगा था
गया हो। तनख़्वाह तो कहीं भी
में जो कुछ एक्स्ट्रा मिलता था, वह
थी, रूपा थी, सकीना थी! वह
यह सोचकर उसे एक विचित्र गुद

आठ साल की थी, अब बीस साल की होगी। उसके कदम कुछ तेज हो गये और वह इस विश्वास के साथ चलने लगा कि उसका असली क्षेत्र थिएटर ही है—वह यूँ ही रेस्ट-हाउस की चौकीदारी में अपना जीवन नष्ट कर रहा है!

जब उसने दो नंबर कमरे में पहुँचकर कैप्स्टन की डिबिया बाबू को दी, तब भी उसका मन थिएटर के वातावरण से बाहर नहीं निकला था। दियासलाई जलाकर बाबू का सिगरेट सुलगवाते हुए उसने उससे पूछ लिया, "क्यों बाबूजी, आजकल उधर कोई थिएटर कंपनी नहीं चल रही?"

"मुझे पता नहीं है," बाबू ने सिगरेट का कश खींचकर कहा।

"दरअसल बात यह है कि मेरी असली लाइन वही है," संतराम जरूरत न होने पर भी झाड़न उठाकर कुर्सी झाड़ने लगा, "चौकीदारी में तो मैं ऐसे ही आ फँसा हूँ। वरना पहले मैं दिल्ली में थिएटर में ही काम करता था।"

"यहाँ तुम कब से काम कर रहे हो?" बाबू ने पूछ लिया।

"यहाँ काम करते मुझे यहाँ कोई दस-ग्यारह साल हुए हैं।"

"तब तो तुम यहाँ के पुराने आदमी हो!"

"जी हाँ!" ये शब्द संतराम ने आदतन ही कह दिये। वैसे यहाँ का पुराना आदमी कहलाना उस वक्त उसे अच्छा नहीं लगा।

"थिएटर में तुम कितने साल रहे?" बाबू ने दूसरा सवाल पूछा। संतराम इस सवाल का सही जवाब अच्छी तरह जानता था। उस 'असली लाइन' में उसने कुल मिलाकर एक साल और सात महीने काम किया था, जिनमें से तनख्वाह सिर्फ आठ महीनों की ही मिली थी। पर जवाब देने [illegible] ने के लिए रुका, फिर बोला, "दस [illegible] होंठों पर तिरछी-सी हँसी

[illegible] से साफ करता हुआ [illegible] ने लगा, तो बाबू [illegible] जाकर दायें हाथ से [illegible] [illegible] लगती है।

भी ईर्ष्या थी कि [illegible] इतनी सुन्दर थी, और तीन बच्चों की माँ होकर भी अभी लड़की-सी नज़र आती थी। दूसरी तरफ़ उसकी अपनी पत्नी शान्ति थी, जो अभी एक बच्चे की माँ थी, पर लगता था उसकी जवानी कब की पीछे छूट गयी है—सुन्दर तो ख़ैर वह कभी थी ही नहीं। जब शान्ति वंती को कोई नसीहत देती, तो खुद गंगाराम को उसका आदेश देना अस्वाभाविक लगता, हालाँकि शान्ति के शिकायत करने पर कि वंती या आपस में उसकी अवहेलना करती है, वह मुँह से उसके अधिकार का समर्थन कर दिया करता। पर जब शान्ति वंती के सामने ही उसकी शिकायत करने लगती, तो वह निरपेक्ष मध्यस्थ की तरह कहता, "पता नहीं तुम लोग आपस में झगड़ती क्यों रहती हो? यह सरकारी काम है, और हम सब का साझा फ़र्ज़ है। हमें आपस में मेल-जोल के साथ रहना चाहिए।"

वंती के पास से निकलकर गंगाराम अपने क्वार्टर के पास पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ शान्ति किसी वजह से बच्चे पर झुँझला रही है। उसका ढीला-ढाला शरीर, फिर उसमें भी ढीले-ढाले कपड़े, और उस पर यह झुँझलाहट का भाव देखकर गंगाराम का अपना मन झुँझलाहट से भर गया। उसका मन हुआ कि उसे डाँट दे, पर फिर कुछ सोचकर वह आगे बढ़ गया। पर सड़क पर आकर भी उसकी झुँझलाहट कम नहीं हुई। उसने बाबू के लिए कैप्स्टन की डिबिया खरीदी और एक लैंप की डिबिया अपने लिए ले ली। उसमें से एक सिगरेट सुलगाये हुए वह रेस्ट-हाउस की तरफ़ लौटा। चलते हुए उसके दिमाग़ में उन दिनों की धुंधली तसवीरें उभरने लगीं जब वह दिल्ली में बाबू गनपतलाल के थिएटर में काम करता था। वहाँ उसका काम बिजली की फ़िटिंग करने का था, पर दो-एक बार बाबू गनपतलाल ने उसे पार्ट करने का मौक़ा भी दे दिया था। उस थिएटर में लगातार छह-छह महीने तनख़्वाह नहीं मिलती थी। फिर भी जिस दिन थिएटर बन्द हुआ, उस दिन उसे यही लगा था जैसे उसके जीवन का आधार उससे छिन गया हो। तनख़्वाह तो कहीं भी काम करने से मिल सकती थी, पर थिएटर में जो कुछ एक्स्ट्रा मिलता था, वह और कहाँ [illegible] था? वहाँ मिस्रा थी, रूपा थी, सकीना थी! वह वक़्त अब [illegible] छे रह गया था। यह सोचकर उसे एक विचित्र गुदगुदी हुई [illegible] ी चंद [illegible]

आठ साल की थी, अब बीस साल की होगी। उसके कदम कुछ तेज हो गये और वह इस विश्वास के साथ चलने लगा कि उसका असली क्षेत्र थिएटर ही है—वह यूँ ही रेस्ट-हाउस की चौकीदारी में अपना जीवन नष्ट कर रहा है।

जब उसने दो नंबर कमरे में पहुँचकर कैप्स्टन की डिबिया बाबू को दी, तब भी उसका मन थिएटर के वातावरण से बाहर नहीं निकला था। दियासलाई जलाकर बाबू का सिगरेट सुलगवाते हुए उसने उससे पूछ लिया, "क्यों बाबूजी, आजकल उधर कोई थिएटर कम्पनी नहीं चल रही ?"

"मुझे पता नहीं है," बाबू ने सिगरेट का कश खींचकर कहा।

"दरअसल बात यह है कि मेरी असली लाइन वही है," संतराम जरूरत न होने पर भी झाड़न उठाकर कुर्सी झाड़ने लगा, "चौकीदारी में तो मैं ऐसे ही आ फँसा हूँ। वरना पहले मैं दिल्ली में थिएटर में ही काम करता था।"

"यहाँ तुम कब से काम कर रहे हो ?" बाबू ने पूछ लिया।

"यहाँ काम करते मुझे यही कोई दस-ग्यारह साल हुए हैं।"

"तब तो तुम यहाँ के पुराने आदमी हो !"

"जी हाँ !" ये शब्द संतराम ने आदतन ही कह दिये। वैसे वहाँ का पुराना आदमी कहलाना उस वक्त उसे अच्छा नहीं लगा।

"थिएटर में तुम कितने साल रहे ?" बाबू ने दूसरा सवाल पूछा। संतराम इस सवाल का सही जवाब अच्छी तरह जानता था। उस 'अपनी लाइन' में उसने कुल मिलाकर एक साल और सात महीने काम किया था, जिनमें से तनख्वाह सिर्फ़ आठ महीने की ही मिली थी। पर जवाब देने से पहले वह जैसे मन-ही-मन गिनती करने के लिए रुका, फिर बोला, "बस जी, यहाँ आने से पहले मैं वहीं था।" और उसके होठों पर खिसियानी हँसी की एक रेखा दिखाई दे गयी।

कुर्सी से हटकर अब अलमारी के कोने झाड़न से साफ करता हुआ संतराम बाबू को अपने थिएटर के दिनों के अनुभव सुनाने लगा, तो बाबू ने उसे बीच में ही रोक दिया। कहा कि वह जल्दी से जाकर डाकखाने से दो लिफ़ाफ़े और चार पोस्टकार्ड ला दे, उसे कुछ जरूरी चिट्ठियाँ लिखनी हैं।

डाकखाने से लिफ़ाफ़े और पोस्टकार्ड ख़रीदते हुए उसने सुना कि जमादार माधो इलेक्शन जीत गया है—और लोग उसे मालाएँ पहनाकर हेडक्वार्टर्स की तरफ़ ला रहे हैं। उसने जेब का नया सिगरेट सुलगाया और बाहर आकर इधर-उधर देखा, लाइन्स के बड़े रास्ते पर, तीन-चार सौ लोग जुटे हुए, [illegible] जमादार माधो को घेरे उसके साथ आ रहे थे। उनके रंगीन [illegible] थे, [illegible] और ओठों पर भी मुस्कान खिल रही थी। वे बाहें उठा-उठाकर जमादार के साथ नारे लगा रहे थे। संतराम ने उधर से आते एक नवयुवक से पूछा, "क्यों भाई, कितने वोटों से जीता है जमादार ?"

"दो सौ वोटों से !" उस नवयुवक ने यह भी बतलाया कि रात को कमेटी के चेयरमैन ने जमादार को खाने पर बुलाया है।

"अच्छा !" संतराम की आँखें फैल गयीं। उसने फिर उधर देखा, जिधर से लोग माधो को साथ लिए आ रहे थे। पल-भर वह इस अनिश्चय में रहा कि उसे वहाँ रुकना चाहिए या रेस्ट-हाउस की तरफ़ चल देना चाहिए। फिर हाथ के कार्ड-लिफ़ाफ़ों से बहाना पाकर वह रेस्ट-हाउस की तरफ़ चल दिया।

वंतो अपने क्वार्टर के बाहर खड़ी माधो को दूर से आते देख रही थी। उसके चेहरे की चमक उस समय और बढ़ गयी थी। कुछ और मेहतरानियाँ भी उसके पास खड़ी थीं। संतराम ने पास से निकलते हुए उससे कहा, "सुना है दो सौ वोटों से जीता है माधोराम !"

उसने आवाज़ में काफ़ी मिठास लाने की कोशिश की थी, पर वंतो ने उसकी बात की तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया। उपेक्षा के साथ बोली, "हाँ, राजू अभी हमें बता गया है।"

संतराम मन-ही-मन उसे गाली देकर दो नम्बर कमरे की तरफ़ चल दिया। जब उसने कार्ड-लिफ़ाफ़े बाबू को दिये, तो उसे आदेश मिला कि वह वहीं ठहरे, अभी उसे चिट्ठियाँ पोस्ट करने के लिए ले जानी होंगी। कुछ देर बाद जब वह चिट्ठियाँ लेकर निकला, तो माधो के साथी, रेस्ट-हाउस के बाहर ज़ोर-ज़ोर से नारे लगा रहे थे—"हरिजन यूनियन ज़िन्दाबाद !" "माधोराम जमादार ज़िन्दाबाद !"

संतराम डाकख़ाने की तरफ़ न जाकर पीछे के रास्ते से डेरीफ़ार्म के

टरवक्स की तरफ चल दिया, हालांकि वह जानता था कि टेरीफ़ार्म के टर-वक्स से दिन की आखिरी डाक चार बजे निकल जाती है और उस क्त साढ़े चार बज चुके थे।

दूसरे दिन सवेरे संतराम की पत्नी शान्ति की सूरत कुछ और-सी हो ही थी—उसकी आँखें सूज रही थीं और चेहरे पर झाइयाँ पड़ी थीं। संतराम चाय लेकर दो नंबर कमरे में आया, तो चाय उँडेलते हुए उसने बाबू से पूछा, "क्यों साहब, जमादार कमरा साफ़ कर गया ?"

"उसकी बीवी साफ़ कर गयी है।" बाबू ने जवाब दिया।

"मेरे बारे में उसने कोई बात तो नहीं की ?" सन्तराम ने खिसियाने-से स्वर में पूछ लिया।

"नहीं !" बाबू ने एक शब्द में उत्तर देकर चाय की प्याली उठा ली।

अब संतराम व्याख्या करता हुआ कहने लगा, "साहब, आपको पता है कल जमादार इम्तिहान जीत गया है ? बड़े साहब ने रात को इसे और इसकी बीवी को खाने पर बुलाया था। पता नहीं, इन लोगों ने वहाँ मेरी क्या-क्या शिकायत की होगी। मैंने सोचा शायद आपसे भी जमादारिन ने कुछ कहा हो।"

"मुझसे किसी ने कोई बात नहीं की !" बाबू ने हल्के से उसे झिड़क दिया।

संतराम कुछ क्षण चुप रहा। फिर बोला, "साहब, मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैं किसी से लड़ना-झगड़ना पसंद नहीं करता। पर मेरी घर वाली का अपनी ज़बान पर काबू नहीं है। वही रोज़-रोज़ जमादारिन से लड़ पड़ती थी, जिससे जमादार की मेरे साथ लड़ाई हो जाती थी। मैंने इसे कई बार समझाया, पर वह समझती ही नहीं थी। आज रात फिर मुझसे नहीं रहा गया। मैंने दो हाथ ऐसे लगा दिये हैं कि अब आगे कभी उनसे उलटी बात नहीं करेगी।"

बाबू ने चाय की प्याली ट्रे में रखते हुए कहा कि वह ट्रे उठाकर ले जाय। संतराम ट्रे उठाता हुआ बोला, "अब तो बड़ा साहब भी जमादार की ही सुनेगा। उसने साहब से मेरी कोई उलटी-सीधी शिकायत कर दी, तो बताइए मैं कहाँ का रहूँगा ? औरत जात इन चीज़ों को नहीं समझती।

मुसीबत तो आदमी की होती है, जिसकी नौकरी का सवाल होता है।"

और वह हँसते हुए बाहर निकल आया। बरामदे के सिरे पर उसे जमादार मातादीन दिखायी दे गया। उसके पास पहुँच कर संतराम बोला, "क्यों भई, जीत लिया इलेक्शन मातादीन? कल सुनकर बहुत ही खुशी हुई। हम गरीब लोगों की भी अब कमेटी में नुमाइंदगी हो जाएगी। अब लगता है कि हाँ, सचमुच में ही मुल्क आज़ाद हुआ है।"

और थोड़ी देर बात करने पर भी जब और कुछ कहने को नहीं मिला, तो वह संतराम अपने क्वार्टर की तरफ बढ़ गया। वहाँ उस समय शान्ति एक हाथ से बच्चे का कान पकड़े गालियाँ देती हुई दूसरे हाथ से उसे पीट रही थी।

क्लेम

अड्डे से तांगा चला, तो उसमें कुल तीन ही सवारियाँ थीं। दूर से बस आती दिखाई न दे जाती, तो साधुसिंह कुछ देर और अभी चौथी सवारी का इन्तज़ार करता। पर बस के आते ही तांगे में बैठी सवारियाँ उतरकर बस में चली जाती थीं, इसलिए बस के अड्डे पर पहुँचने से पहले ही तांगा निकाल लेना ज़रूरी हो जाता था। बस के आने तक सवारियाँ कितनी ही उतावली मचायें, वह पूरी चार सवारियाँ लिये बिना अड्डे से बाहर नहीं निकलता था। बस कचहरी से मॉडल टाउन के पाँच पैसे लेती थी, इसलिए तांगे भी पाँच-पाँच पैसे में ही जाते थे। पूरी चार सवारियाँ हों तो कहीं पाँच आने पैसे बनते थे। नहीं तो घोड़े को सवा मील दौड़ाकर भी दस या पन्द्रह पैसे ही हाथ आते थे। आज सुबह से उसने मॉडल टाउन के तीन फेरे लगाए थे, मगर अभी उसकी जेब में सवा आने भी जमा नहीं हुए थे। जून की चिलचिलाती धूप में वैसे ही घोड़े का दम निकल रहा था, इसलिए दस-दस पैसे के लिए उसे दौड़ाना अक्लमन्दी नहीं थी। मगर इसके सिवा कोई चारा भी नहीं था। गरमी में सवारी ऐसे ही कम निकलती थी, फिर मुकाबिला बस से था जो कचहरी से मॉडल टाउन पहुँचने में पाँच मिनट भी नहीं लेती थी।

"चल अपसरा, चल, तेरे सदके, चल!" वह खड़ा होकर लगाम को घुमाता हुआ उससे चाबुक का काम लेने लगा। धोबी मोहल्ला पार करने तक उसे आशा थी कि शायद रास्ते में कोई सवारी मिल जाय। मगर झोंपड़ियों में ऊँघती दो-एक धोबिनों को छोड़कर सारा मोहल्ला सुनसान था। मोहल्ले से निकलकर उसने लगाम ढीली छोड़ दी और वज़न बराबर करने के लिए खुद बांस पर बैठ गया।

पीछे से बस आ रही थी, इसलिए पिछली सीट पर बैठी स्त्री बड़बड़ाने लगी। "बैठाने वक्त तो मिन्नत तरला करके बैठा लेते हैं और चलाते इस तरह हैं जैसे सड़क का मुआइना करने निकले हों। इतनी ही देर सवारी

थी, तो हम से पहले कह देते, हम बस में बैठ जाते। हमें इतना ज़रूरी काम है नहीं तो हमें इतनी गरमी में घर से निकलने की क्या पड़ी थी?"

साधुसिंह उचककर बांस पर ज़रा और आगे हो गया और जल्दी-जल्दी लगाम को झटकने लगा। "चल तुझे ठण्ड पड़े, तेरी जवानी के सदके, चलाचल गोली की चाल, माई बीबी नाराज़ हो रही हैं। चलाचल तेरी ख़ैर, अफ़सरा! मार दे हल्ला! ताक्!"

मगर लगाम के झटके खाकर भी अफ़सर की चाल तेज़ नहीं हुई। वह दो बार इधर-उधर सिर झटककर अपनी चाल चलता रहा। बस हॉर्न बजाती पीछे से आई और धूल का बवण्डर छोड़कर आगे निकल गई।

"देखा निकल गई न बस? कहता था बस से पहले पहुँचाऊँगा!" वह स्त्री फिर बोली।

साधुसिंह जवाब न देकर लगाम को झटकता रहा और अफ़सर लगाम की परवाह किये बिना अपनी चाल चलता रहा।

सवा मील कोई ज्यादा रास्ता नहीं था। सूरज ढलने के बाद यही रास्ता चुटकियों में पार हो जाता था। मगर उस वक़्त भरी दोपहर थी और आसपास कहीं छाया नज़र आती भी थी तो बहुत सिमटी-सिमटी और वीरान-सी। कोलतार की सड़क जगह-जगह से पिघल गई थी। आस-पास के डेढ़-डेढ़ आदमी गहरे छप्पर सूख गए थे। साधुसिंह सोचने लगा कि अभी तो गर्मी की शुरूआत ही है, आगे चलकर जाने क्या होगा?

"चल राजा, चल पुतरा, तेरी जान की खैर, तेरी सलामती की बरकत, खा जा ग़म और चलाचल गोली की चाल, तेरी माँ के दूध की खैर...!"

ताँगे में बैठी तीनों सवारियाँ क्लेम्ज़ के दफ़्तर की थीं। आगे बैठा सरदार कह रहा था कि उसका साठ हज़ार का क्लेम मंजूर हुआ है जिसमें से आधा पैसा उसे नकद मिलेगा और आधा जायदाद की शक्ल में। पीछे बैठी स्त्री रो रही थी कि बेड़ा ग़र्क हो क्लेम मंजूर करने वालों का जो उसका सिर्फ़ अट्ठारह हज़ार का ही क्लेम मंजूर किया गया है...गुजराँवाला में उनके चार मकान थे और एक साढ़े तीन कनाल का बग़ीचा था।

बागीचा चार कनाल का होता, तो उन्हें ज्यादा रुपया मिलता। अगर उन्हें पहले पता होता, तो वे आधा कनाल ज्यादा लिख देते... वे अपनी सचाई में मारे गये। घर में उसकी दो जवान लड़कियाँ हैं, जिन्हें अकेली छोड़कर उसे रोज-रोज बटाला से जालन्धर के चक्कर काटने पड़ते हैं। इसी तरह चक्कर काटते-काटते उसके पति की मृत्यु हो गई और वह खुद भी बीमार रहने लगी है।

"पता नहीं मुझे अपने जीते-जी इन कसाइयों का पैसा देखने को मिलेगा या नहीं? मुझे तो लगता है कि मैं भी इसी में मर-खप जाऊँगी, और मेरे बच्चे पीछे बिलखते रहेंगे।" उसका लहजा ऐसा था जैसे वह बात न करके किसी से फरियाद कर रही हो। चेहरे के भाव से लगता था जैसे अभी-अभी उसे कोई सदमा पहुँचा हो।

उसी सीट पर उस स्त्री के साथ व्यक्ति माथे पर त्योरियाँ डाले खामोश बैठा था।

"माईजी, अट्ठारह हजार में से अभी कुछ मिला भी है या नहीं?" आगे बैठे सरदार ने सहानुभूति के स्वर में पूछ लिया।

"कुल छ: हजार मिला है अभी।" वह स्त्री बोली। "मेरा बाल-बच्चों वाला घर है। छ: हजार से मेरा बनता क्या है? मेरे बच्चे अच्छा खाने-पहनने के आदी हैं। उन पर छ:-छ: हजार एक महीने में खर्च होते थे। और कहते हैं यह रुपया भी विधवा होने के कारण मुझे जल्दी मिल गया है। इतना देकर भी उन्होंने मुझ पर एहसान किया है!" और वह पल्ले से आँखें पोंछने लगी।

खामोश बैठा व्यक्ति सरदार की तरफ मुड़ा और धिक्कारने की-सी आवाज गले से निकालकर बोला, "सच कहते हैं औरतों की अक्ल टखनों में होती है!"

"क्यों भाई, मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू मुझे गालियाँ दे रहा है?" स्त्री आँसू पोंछती हुई सहसा तमक उठी। "मैं तुझसे तेरी जमीन-जायदाद तो नहीं माँग रही। अपना जो-कुछ छोड़ आई हूँ, उसी का रोना रो रही हूँ।"

"तू अकेली नहीं छोड़ आयी, हम सब अपने घर-बार पीछे छोड़ आये

है। इन्हें तो साठ हज़ार भी मिल गए हैं। यहाँ हम जैसे भी हैं जिन्हें आज तक फूटी पाई नहीं मिली। हमारा कसूर यही है कि सीधे-सादे दोनों शरणागत हैं। मैं अगर मर-खप गया होता, तो मेरे बच्चों को भी अब तक दो रोटियाँ नसीब हो जातीं। और मेरा अंग-अंग टूट रहा है, जोड़ मेरे दर्द करते हैं—मैं बैठा हुआ भी क्या मुर्दों से बेहतर हूँ? मगर सरकार के घर में ऐसा अंधेर है कि ये लोग इन्सान की बदहाली को नहीं देखते, बस जीते और मरे हुए का हिसाब करते हैं। मुझे आज ये एक हज़ार ही दे दें तो मैं कोई छोटी-मोटी दुकान डालकर बैठ जाऊँ। मेरे बच्चों के पास तो एक-एक फटी हुई कमीज़ भी नहीं है।"

अपनी-अपनी तक़दीर की बात है भाई साहब, कोई किसी दूसरे की तक़दीर थोड़े ही ले सकता है?" सरदार मध्यस्थता करता हुआ बोला। "हम और आप भी दुखी हैं, और यह भाई भी दुखी है—कौन यहाँ दुखी नहीं है? कोई कम दुखी है, कोई ज्यादा दुखी है।"

"आपको साठ हजार मिल रहे हैं, आपको किस चीज का दुख है?" वह व्यक्ति अब और कुढ़ गया।

"मिल रहे हैं, यह भी तक़दीर की बात है," सरदार बोला। "क्लेम भरते हमें अक़्ल आ गयी, उसी का फल समझिए। नहीं हमें भी ये दस-बीस हज़ार देकर टरका देते।"

"आपने क्लेम ज्यादा का भरा था?"

"हमारी डेढ़ लाख की जायदाद थी। मगर हमें पता था कि असली क्लेम भरेंगे तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। सो वाहगुरु का नाम लेकर हमने इस तरह फ़ार्म भरा कि अपनी जायदाद की असली कीमत तो कम-से-कम वसूल हो ही जाय। मगर इन बेईमानों ने फिर भी कुल साठ हज़ार का ही क्लेम मंजूर किया है। हम छः भाई हैं—दस-दस हजार लेकर बैठ रहेंगे।"

"मैं इनसे कितना कहती रही, पर इन्होंने मेरी एक नहीं सुनी!" स्त्री हताश भाव से हाथ मलने लगी।

दोनों व्यक्ति सवालिया नजर से उसे देखते रहे।

"मैं कहती रही कि जितना छोड़ आये हो, उससे ज्यादा का क्लेम भरो। मगर ये ऐसे मूरख थे कि हठ पकड़े रहे कि जितना था, उतने का ही

सलेम मरेंगे—पहले ही इतने दुख उठाये हैं, अब और बेईमानी क्यों करें ? आज ये मेरे सामने होते, तो मैं पूछती कि बताओ बेईमानी करने वाले सुखी हैं या हम लोग सुखी हैं ? लोगों ने जितना छोड़ा था, उसका दुगुना-तिगुना वसूल कर लिया, और मैं बैठी हूँ छः हजार लेकर !...हाय, इन लोगों ने तो मेरे बच्चों को भूखों मार दिया !" और अब वह जोर-जोर से रोने लगी।

उसके साथ बैठे व्यक्ति ने दूसरी तरफ मुँह करके माथे पर हाथ रख लिया ! सरदार फिर सहानुभूति प्रकट करने लगा। "रोने से कुछ नहीं होता माई ! जो लिखा है, वही मिलता है। करतार ने पहले ही सब करनी कर रखी है। जो मिला है, उसी से सन्तोष कर।"

"सन्तोष करने को एक मैं ही रह गई हूँ ? सारी दुनिया मौज करे और मैं सन्तोष करके बैठी रहूँ ?" और वह रोती रही।

"जल्दी पहुँचा भाई, इतना आहिस्ता क्यों चला रहा है ?" माई के साथ बैठा व्यक्ति उतावला होकर बोला।

साधुसिंह झुंझलाकर बार-बार लगाम को झटके दे रहा था, मगर घोड़े की चाल में फ़र्क नहीं आ रहा था। अब वह लगाम का सिरा ज़ोर-ज़ोर से उसकी पीठ पर मारने लगा। "तेरी अफ़सर की ऐसी की तैसी ! तेरी पूँछ पर तितैया काटे ! चल पुतरा जल्दी !"

मगर तितैया के डर से भी अफसर की चाल तेज़ नहीं हुई।

कलेक्टर के दफ्तर के बाहर उन लोगों को उतारकर लौटते हुए साधुसिंह को एक भी सवारी नहीं मिली। वह काफ़ी देर मार्केट के मोड़ के पास रुका रहा, मगर तीनों सड़कों में से किसी पर भी उस वक़्त कोई इन्सान चलता दिखाई नहीं दे रहा था। तेरह नम्बर दुकान के साये में दो-एक रिक्शा वाले सोये थे। तेरह नम्बर का सरदार अन्दर बर्फ़ कूट रहा था। साधुसिंह का मन हुआ कि सरदार से एक गिलास शिकंजवी बनवाकर पी ले और कुछ देर रिक्शा वालों के पास ही एक तरफ लेट रहे। मगर ताँगा खड़ा करने के लिए वहाँ कोई छायादार जगह नहीं थी और न ही नजदीक कोई बहबच्चा था जहाँ से वह घोड़े को पानी पिला सकता। घोड़ा गरमी के मारे हूँक रहा था और बार-बार ज़बान बाहर निकाल

रहा था। आशुतोष की जेब में जो रुपए आने थे वे भी हिसाब से उसके आगे नहीं थे। घोड़े के लिए घास खरीदने के लिए ही उसे कम-से-कम दो रुपये चाहिए थे। उसने दुकान से तांगे को मोड़ लिया और घोड़े का रुख शहर की तरफ़ करा दिया।

कच्ची सीधी, वीरान सड़क पर यह अकेला तांगा चला रहा था। आसपास के पेड़ भी गर्मी से परेशान सिर झुकाये खड़े थे। फिर भी न जाने किन झुरमुटों में बैठी कुछ चिड़ियाँ बोल रही थीं—चिचिचि... चिचि...चिहुक्...चुन-चुन-चुन...चिचिचि...चिचि...!

आशुतोष लगाम ढीली छोड़कर पिछली सीट पर अधलेटा-सा हो गया। उसका मन उस समय उस आम के पेड़ की डालों के गिर्द मँडरा रहा था, जो उसने बड़े चाव से अपने पत्तोकी के घर के आँगन में लगाया था। दो रुपये महीने का वह मकान बरसों के परिचय के कारण अपना मकान ही लगता था। हीरां ने कितनी ही बार कहा था कि पराये घर में पेड़ लगा रहे हो, पाल-पोसकर एक दिन दूसरों के लिए छोड़ जाओगे! मगर तब यह कहाँ सोचा था कि वह घर इस तरह छूटेगा कि जिन्दगी-भर उसके पास से गुज़रना तक नसीब न होगा!

आम का पेड़ इन दिनों खूब फल रहा होगा।...और हीरां?

उस साल पेड़ पर पहली बार फल आया था। फल आने की खुशी में उसने न जाने कितनी कच्ची अँबियाँ खा डाली थीं।

"क्यों जान-बूझकर दाँत खट्टे करते हो?" हीरां चिढ़ती।

"यह अपने पेड़ का फल है, जानी! इसे खाकर दाँत खट्टे नहीं होते।"

और हीरां के अधखिले यौवन को वह गाढ़े आलिंगन में समेट लेता।

आम हरे से पीले और पीले से सुर्ख हो आये थे, जब बलवा शुरू हुआ। पत्तोकी की हर गली में खून बहने लगा। आधी रात को बलवई उनके मोहल्ले में घुस आये। जब उनके घर का दरवाजा तोड़ा गया, तो वह हीरां को साथ सटाये दम-साधकर चारपाई पर पड़ा था। उन्होंने जल्दी से पिछवाड़े की तरफ़ कूद जाने का निश्चय किया। वह तो झट से कूद गया, मगर हीरां दो बार उचककर भी कूद नहीं पाई। और इससे पहले कि वह फिर एक बार साहस करती, किसी हाथ ने उसे पीछे खींच लिया।

अंधेरा, खेत और रेल की पटरियाँ...बेजान हाथ-पैर और भूख...
टिकट, कूपन, कार्ड और नम्बर...

नाम, साधुसिंह।

वल्द, मिलखासिंह।

कौम, खत्री।

ज़मीन-जायदाद, कोई नहीं।

रुपया-पैसा, कोई नहीं।

क्लेम...?

उसका वह आम का पेड़, जिसके पकने की उसने बेसब्री से इन्तज़ार की थी और जिसकी अँबियाँ खा-खाकर वह अपने दाँत खट्टे करता रहा था—उस पेड़ की छाया में उसे भविष्य के जो साल बिताने थे...?

उस घर की अपनी एक खास तरह की गन्ध थी, जो कपड़ों की गाँठ से लेकर आँगन की दीवारों तक हर चीज़ में समाई रहती थी। वह गन्ध...?

और वे रातें जो आँगन में लेटकर आसमान की ओर ताकते हुए बीतती थीं?

और आने वाली ज़िन्दगी के वे सब मनसूबे, जो उस घर की दहलीज़ के अन्दर-बाहर जाते मन में उठा करते थे...?

"हीरां, बता पहले तेरे लड़का होगा या लड़की?"

"हाय, शरम करो, कैसी बात करते हो?"

"अच्छा, मैं बताऊँ? पहले तेरे एक लड़की होगी, फिर दो लड़के होंगे, फिर एक लड़की होगी...।"

"चुप भी रहो, क्यों यूँ ही बके जाते हो?"

"दूसरी लड़की पहली लड़की से—ज़्यादा खूबसूरत होगी। उसके तेरे जैसे ही मुलायम बाल होंगे, ऐसी ही बड़ी-बड़ी आँखें होंगी, और ठोड़ी के पास यही एक तिल होगा...।"

"हाय, क्या करते हो?"

"मैं उसके इसी तरह चिकुटी काटूंगा, और वह इसी तरह चीख़ उठेगी।"

वह स्पर्श...? वह सिहरन...? वह कल्पना...? वह भविष्य...?

गामुसिंह, वल्द किरपालसिंह, कौम [illegible]—नम्बर...? क्लेम...?

आम का पेड़ अब बड़ा हो गया होगा। घर की दीवारों की गन्ध पहले से बदल गई होगी। और होगी...? आज उसकी गोद में न जाने किसके बच्चे होंगे!

गामुसिंह सीधा होकर बैठ गया। तांगा गांधी मोहल्ले में पहुँच गया था। चारों तरफ हर चीज अब भी काँप रही थी। उसने लगाम को लगातार कई झटके दिये। घोड़े की गरदन थोड़ा ऊपर उठी, फिर उसी तरह झुक गयी।

अड्डे पर पहुँचकर गामुसिंह ने घोड़े को चहबच्चे से पानी पिलाया और सीट के नीचे से चारा निकालकर उसके आगे डाल दिया। घोड़ा चारे में मुँह मारने लगा, और वह उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

"तेरी बरकत रही अफ़सरा, तो अपने पुराने दिन फिर आएँगे! खा ले, अच्छी तरह पेट भर ले। अपने सब क्लेम तुझी को पूरे करने हैं, तेरी जान की ख़ैर...।"

और अफ़सर गरदन लम्बी किये चुपचाप चारा खाता रहा।

चैयरिंग क्रासपर पहुँचकर मैंने देखा कि उस वक़्त वहाँ मेरे सिवा एक भी आदमी नहीं है। एक बच्चा, जो अपनी आया के साथ वहाँ खेल रहा था, अब उसके पीछे भागता हुआ ठंडी सड़कपर चला गया था। घाटी में एक जली हुई इमारत का जीना इस तरह शून्य की तरफ झांक रहा था जैसे सारे विश्व को आत्महत्या की प्रेरणा और अपने ऊपर आकर कूद जाने का निमंत्रण दे रहा हो। आसपास के विस्तार को देखते हुए उस निस्तब्ध एकान्त में मुझे हार्डी के एक लैंडस्केप की याद हो आयी, जिसके कई पृष्ठों के वर्णन के बाद मानवता दृश्य-पटपर प्रवेश करती है—अर्थात् एक छकड़ा धीमी चाल से आता दिखाई देता है। मेरे सामने भी खुली घाटी थी, दूर-तक फैली पहाड़ी शृंखलाएँ थीं, बादल थे, चैयरिंग क्रास का सुनसान मोड़ था.. और वहाँ भी कुछ उसी तरह मानवता ने दृश्यपट पर प्रवेश किया.. अर्थात् एक पचास-पचपन साल का भला आदमी छड़ी टेकता दूर से आता दिखाई दिया। वह इस तरह इधर-उधर नज़र डालता चल रहा था जैसे देख रहा हो कि जो ढेले-पत्थर कल वहाँ पड़े थे, वे आज भी अपनी जगह पर हैं या नहीं। जब वह मुझसे कुछ ही फासले पर रह गया, तो उसने आँखें तीन-चौथाई बन्द कर के छोटी-छोटी लकीरों जैसी बना लीं और मेरे चेहरे का गौर से मुआइना करता हुआ आगे बढ़ने लगा। मेरे पास आने तक उसकी नज़र ने जैसे फैसला कर लिया, और उसने रुककर छड़ी पर भार डाले हुए पल भर के वक़्फ़े के बाद पूछा, "यहाँ नये आये हो ?"

"जी हाँ" मैंने उसकी मुरझायी हुई पुतलियों में अपने चेहरे का साया देखते हुए ज़रा सकोच के साथ कहा।

"मुझे लग रहा था कि नये ही आये हो", वह बोला। "पुराने लोग तो सब अपने पहचाने हुए हैं।"

"आप यहीं रहते हैं ?" मैंने पूछा।

"हाँ, यहीं रहते हैं", उसने विरक्ति और शिकायत के स्वर में उत्तर दिया। "यहाँ का अन्न-जल लिखाकर लाये थे, यहीं तो न रहेंगे...अन्न-जल मिले चाहे न मिले।"

उसका स्वर कुछ ऐसा था जैसे मुझ से उसे कोई पुराना गिला हो। मुझे लगा कि या तो वह बेहद निराशावादी है, या उसे पेट का कोई संक्रामक रोग है। उसकी रस्सी की तरह बँधी टाई से यह अनुमान होता था कि वह एक रिटायर्ड सरकारी कर्मचारी है जो अब अपनी कोठी में सेब का बग़ीचा लगाकर उसकी रखवाली किया करता है।

"आपकी यहाँ पर अपनी ज़मीन होगी?" मैंने उत्सुकता न रहते हुए भी पूछ लिया।

"ज़मीन?" उसके स्वर में और भी निराशा और शिकायत भर आयी। "ज़मीन कहाँ जी?" और फिर जैसे कुछ खीझ और कुछ व्यंग्य के साथ सिर हिलाकर उसने कहा, "ज़मीन!"

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि अब मुझे क्या कहना चाहिए। वह उसी तरह छड़ी पर भार दिये मेरी तरफ़ देख रहा था। कुछ क्षणों का वह ख़ामोश अन्तराल मुझे विचित्र-सा लगा। उस स्थिति से निकलने के लिए मैंने पूछ लिया, "तो आप यहाँ कोई अपना निज का काम करते हैं?"

"काम क्या करना है जी?" उसने जवाब दिया, "घर से खाना काम अगर है, तो वही काम करते हैं। और आजकल काम रह क्या गये हैं? हर काम का बुरा हाल है!"

मेरा ध्यान पल भर के लिए जली हुई इमारत के ज़ीने की तरफ़ चला गया। उसके ऊपर एक बन्दर आ बैठा था और सिर खुजलाता हुआ शायद यह फ़ैसला करना चाह रहा था कि उसे कूद जाना चाहिए या नहीं।

"अकेले आये हो?" अब उस आदमी ने मुझसे पूछ लिया।

"जी हाँ, अकेला ही आया हूँ," मैंने जवाब दिया।

"आजकल यहाँ आता ही कौन है?" वह बोला। "यह तो बियाबान जगह है। सैर के लिए अच्छी जगहें हैं शिमला, मंसूरी वग़ैरह। वहाँ क्यों नहीं चले गये?"

मुझे फिर से उसकी पुतलियों में अपना साया नज़र आ गया। मगर

मन होते हुए भी मैं उससे यह नहीं कह सका कि मुझे पहले पता होता कि यहाँ आकर मेरी उससे मुलाक़ात होगी, तो मैं ज़रूर किसी और पहाड़ पर चला जाता।

"ख़ैर, अब तो आ ही गये हो," वह फिर बोला। "कुछ दिन घूम-फिर लो। ठहरने का इन्तज़ाम कर लिया है?"

"जी हाँ," मैंने कहा। "कश्मीर रोड पर एक कोठी ले ली है।"

"सभी कोठियाँ खाली पड़ी हैं," वह बोला। "हमारे पास भी एक कोठरी थी। अभी कल ही दो रुपये महीने पर चढ़ाई है। दो-तीन महीने खाली रहेगी। फिर दो-चार रुपये पास से डालकर सफ़ेदी करा देंगे। और क्या!" फिर दो-एक क्षण के बाद उसने पूछा, "खाने का क्या इन्तज़ाम किया है?"

"अभी कुछ नहीं किया," मैंने कहा। "इस वक्त इसी ख़याल से बाहर आया था कि कोई अच्छा-सा होटल देख लूँ, जो ज़्यादा महँगा भी न हो।"

"नीचे बाज़ार में चले जाओ," वह बोला। "नत्थासिंह का होटल पूछ लेना। सस्ते होटलों में वही अच्छा है। वहीं खा लिया करना। पेट ही भरना है! और क्या!"

और अपनी नसीहत मेरे अन्दर भरकर वह पहले की तरह छड़ी टेकता हुआ रास्ते पर चल दिया।

नत्थासिंह का होटल बाज़ार में बहुत नीचे जाकर था। जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, बूढ़ा सरदार नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे अपनी दुकान के सामने हलवाई की दुकान में बैठे हलवाई के साथ ताश खेल रहे थे। मुझे देखते ही नत्थासिंह ने तपाक से अपने बड़े लड़के से कहा, "उठ बसन्ते, ग्राहक आया है।"

बसन्ते ने तुरन्त हाथ के पत्ते फेंक दिये और बाहर निकल आया।

"क्या चाहिए, साब?" उसने आकर अपनी गद्दी पर बैठते हुए पूछा।

"एक प्याली चाय बना दो," मैंने कहा।

"अभी लीजिए!" और वह केतली में पानी डालने लगा।

"अंडे-वडे रखते हो?" मैंने पूछा।

"रखते तो नहीं, पर आपके लिए अभी मँगवा देता हूँ," वह बोला।

"[illegible] ?"

"[illegible]," मैंने कहा।

"जा हरबंसे, भागकर ऊपर [illegible] से दो अंडे ले आ", उसने [illegible] को आवाज़ दी।

[illegible] हरबंसे ने [illegible] के हाथ के पत्ते फेंक दिये और उठ कर बाहर आ गया। [illegible] लेकर [illegible] भागता हुआ बाजार की सीढ़ियाँ चढ़ गया। [illegible] पर [illegible] से हवा [illegible]।

हलवाई और नत्थासिंह अभी तक अपने-अपने पत्ते हाथ में लिये थे। हलवाई अपने पाजामे का [illegible] उँगली और अँगूठे के बीच लेकर जाँघ [illegible] कह रहा था, "अब लड़ाई शुरू हो रही है, नत्थासिंह!"

"हाँ, अब [illegible] आती हैं, तो लड़ाई शुरू होगी ही", नत्थासिंह अपनी सफ़ेद दाढ़ी में उँगलियों से कंघी करता हुआ बोला। "चार पैसे कमाने के यही तो दिन हैं।"

"पर नत्थासिंह, अब वह पहले वाली बात नहीं है," हलवाई ने कहा। "पहले दिनों में हजार-बारह सौ आदमी इधर को आते थे, हजार-बारह सौ उधर को जाते थे, तो लगता था कि हाँ, लोग बाहर से आये हैं। अब आ भी गये सौ-पचास तो क्या है!"

"सौ-पचास की भी बड़ी बरकत है," नत्थासिंह धार्मिकता के स्वर में बोला।

"कहते हैं आजकल किसी के पास पैसा ही नहीं रहा," हलवाई ने जैसे चिन्तन करते हुए कहा। "यह बात मेरी समझ में नहीं आती। दो-चार साल सबके पास पैसा हो जाता है, फिर एकदम सब-के-सब भूखे-नंगे हो जाते हैं! जैसे पैसों पर किसी ने बाँध बाँधकर रखा है। जब चाहता है छोड़ देता है, जब चाहता है रोक लेता है!"

"सब करनी कर्तार की है," कहता हुआ नत्थासिंह भी पत्ते फेंककर उठ खड़ा हुआ।

"कर्तार की करनी कुछ नहीं है," हलवाई बेमन से पत्ते रखता हुआ बोला। "जब कर्तार पैदावार उसी तरह करता है, तो लोग क्यों भूखे-नंगे

हो जाते हैं ? यह बात मेरी समझ में नहीं आती ।"

नत्थासिंह ने दाढ़ी खुजलाते हुए आकाश की तरफ देखा, जैसे खीज रहा हो कि कर्तार के अलावा दूसरा कौन है जो लोगों को भूखे-नंगे बना सकता है ।

"कर्तार को ही पता है," पल भर बाद उसने सिर हिलाकर कहा ।

"कर्तार को कुछ पता नहीं है," हलवाई ने ताश की गड्डी फटी हुई डब्बी में रखते हुए सिर हिलाकर कहा और अपनी गद्दी पर जा बैठा । मैं यह तय नहीं कर सका कि उसने कर्तार को निर्दोष बताने की कोशिश की है, या कर्तार की ज्ञानशक्ति पर संदेह प्रकट किया है !

कुछ देर बाद मैं चाय पीकर वहाँ से चलने लगा, तो बसन्ते ने कुल छः आने माँगे । उसने हिसाब भी दिया—चार आने के अंडे, एक आने का घी और एक आने की चाय । मैं पैसे देकर बाहर निकला, तो नत्थासिंह ने पीछे से आवाज दी, "भाई साहब, रात को खाना भी यहीं खाइयेगा । आज आपके लिए स्पेशल चीज़ बनाएंगे ! जरूर आइएगा !"

उसके स्वर में ऐसा अनुरोध था कि मैं मुसकराये बिना नहीं रह सका । सोचा कि उसने छः आने में क्या कमा लिया है जो मुझ से रात को फिर आने का अनुरोध कर रहा है ।

शाम को सैर से लौटते हुए मैंने एक एजेंसी से अखबार खरीदा और बैठकर पढ़ने के लिए एक बड़े-से रेस्तराँ में चला गया । अन्दर पहुँच कर देखा कि कुर्सियाँ, मेज़ और सोफे करीने से सजे हुए हैं, पर न तो हाल में कोई बैरा है, और न ही काउण्टर पर कोई आदमी है । मैं एक सोफ़े पर बैठकर अखबार पढ़ने लगा । एक कुत्ता जो उस सोफे से सटकर लेटा था, अब वहाँ से उठकर सामने के सोफे पर आ बैठा और मेरी तरफ़ देखकर जीभ लपलपाने लगा । मैंने एक बार हल्के से मेज को थपथपाया, बैरे को आवाज दी, पर कोई इन्सानी सूरत सामने नहीं आयी । अलबत्ता, कुत्ता सोफे से मेज पर आकर अब और भी पास से मेरी तरफ जीभ लपलपाने लगा । मैं अपने और उसके बीच अखबार का परदा करके खबरें पढ़ता रहा ।

उस तरह बैठे हुए मुझे पन्द्रह-बीस मिनट बीत गये । आखिर जब

मैं वहाँ से उठने को हुआ था, कि बाहर का दरवाज़ा खुला और पाजामा-कमीज़ पहने एक आदमी अन्दर दाखिल हुआ। मुझे देखकर उसने दूर से सलाम किया और पास आकर ज़रा संकोच के साथ कहा, "माफ़ कीजिएगा, मैं एक बाबू का सामान मोटर के अड्डे तक छोड़ने चला गया था। आपको आये ज़्यादा देर तो नहीं हुई ?"

मैंने उसके ढीले-ढाले लिबास पर एक गहरी नज़र डाली और उससे पूछ लिया, "तुम यहाँ अकेले ही काम करते हो ?"

"जी, आजकल अकेला ही हूँ", उसने जवाब दिया। "दिन भर मैं यहीं रहता हूँ, सिर्फ़ जब भी कभी किसी बाबू का सामान मिल जाय, तो अड्डे तक छोड़ने चला जाता हूँ।"

"यहाँ का कोई मैनेजर नहीं है ?" मैंने पूछा।

"जी, मालिक आप ही मैनेजर है," वह बोला। "वह आजकल अमृतसर में रहता है। यहाँ का सारा काम मेरे जिम्मे है।"

"तुम यहाँ चाय-वाय कुछ बनाते हो ?"

"चाय, काफ़ी—जिस चीज़ का आर्डर दें, वह बन सकती है !"

"अच्छा ज़रा अपना मेन्यू दिखाना।"

उसके चेहरे के भाव से मैंने अन्दाज़ा लगाया कि वह मेरी बात नहीं समझा। मैंने उसे समझाते हुए कहा, "तुम्हारे पास खाने-पीने की चीज़ों की छपी हुई लिस्ट होगी, वह ले आओ।"

"अभी लाता हूँ जी," कहकर वह सामने की दीवार की तरफ़ चला गया और वहाँ से एक गत्ता उतार लाया। देखने पर मुझे पता चला कि वह उस होटल का लायसेंस है।

"यह तो यहाँ का लाइसेंस है," मैंने कहा।

"जी, छपी हुई लिस्ट तो यहाँ पर यही है," वह असमंजस में पड़ गया।

"अच्छा ठीक है, मेरे लिए चाय ले आओ," मैंने कहा।

"अच्छा जी !" वह बोला। "मगर साहब," और उसके स्वर में काफ़ी आत्मीयता आ गयी। "मैं कहता हूँ, खाने का टैम है, खाना ही खाओ। चाय का क्या पीना ! साली अन्दर जाकर नाड़ियों को जलाती है।"

मैं उसकी बात पर मन-ही-मन मुसकराया। मुझे सचमुच भूख लग रही थी, इसलिए मैंने पूछा, "सब्ज़ी-अब्ज़ी क्या बनायी है?"

"आलू-मटर, आलू-टमाटर, भुर्ता, भिंडी, कोफ्ता, रायता..." वह जल्दी-जल्दी लम्बी सूची बोल गया।

"कितनी देर में ले आओगे?" मैंने पूछा।

"बस जी पाँच मिनट में।"

"तो आलू-मटर और रायता ले आओ। साथ खुश्क चपाती।"

"अच्छा जी!" वह बोला। "पर साहब," और फिर स्वर में बड़ी आत्मीयता लाकर उसने कहा। "बरसात का मौसम है। रात के वक़्त रायता नहीं खाओ, तो अच्छा है। ठंडी चीज़ है। बाज़ वक़्त नुकसान कर जाती है।"

उसकी आत्मीयता से प्रभावित होकर मैंने कहा, "तो अच्छा, सिर्फ़ आलू-मटर ले आओ।"

"बस अभी लो जी, अभी लाया," कहता हुआ वह लकड़ी के ज़ीने से नीचे चला गया।

उसके जाने के बाद मैं कुत्ते से जी बहलाने लगा। कुत्ते को शायद बहुत दिनों से कोई चाहने वाला नहीं मिला था। वह मेरे साथ ज़रूरत से ज़्यादा प्यार दिखाने लगा। चार-पाँच मिनट के बाद बाहर का दरवाज़ा फिर खुला और एक पहाड़ी नवयुवती अन्दर आ गयी। उसके कपड़ों और पीठ पर बँधी टोकरी से ज़ाहिर था कि वह वहाँ की कोयला बेचने वाली लड़कियों में से है। सुन्दरता का सम्बन्ध चेहरे की रेखाओं से ही हो, तो उसे सुन्दर कहा जा सकता था। वह सीधी मेरे पास आ गयी और छूटते ही बोली "बाबूजी, हमारे पैसे आज ज़रूर मिल जायें।"

कुत्ता मेरे पास था, इसलिए मैं उसकी बात से घबराया नहीं।

मेरे कुछ कहने से पहले ही वह फिर बोली, "आपके आदमी ने एक किल्टा कोयला लिया था। आज छः-सात दिन हो गये। कहता था दो दिन में पैसे मिल जाएँगे। मैं आज तीसरी बार माँगने आयी हूँ। आज मुझे पैसों की बहुत ज़रूरत है।"

मैंने कुत्ते को बाँहों से निकल जाने दिया। मेरी आँखें उसकी आँखों

[illegible] का ढेर लगा था। उसमें सब चीज़ें—पाजामा, क़मीज़, वास्कट, स्वेटर और मफ़लर— सभी बहुत मैले थे। मुझे उसकी ठोड़ी की तराश बहुत सुन्दर लगी। लगता कि उसकी ठोड़ी के सिरे पर अगर एक तिल भी होता।

"ले लो चौदह आने पैसे हैं," वह कह रही थी।

और मैं सोचने लगा कि उसे ठोड़ी के तिल और चौदह आने पैसे में से एक चीज़ चुनने को कहा जाए, तो वह क्या चुनेगी?

"मुझे अभी आगे कुछ बाज़ार से सौदा ले कर जाना है," वह कह रही थी।

"[illegible] आया!" उसी समय बैरे ने ज़ीने से ऊपर आते हुए कहा।

"[illegible] कल सवेरे चोरी देखा है," वह मुझे लक्ष्य करके ज़रा गुस्से के साथ बोली। "इनसे कहिए, कल सवेरे मेरे पैसे ज़रूर दे दें।"

"इनसे क्या कह रही है, ये तो यहाँ खाना खाने आये हैं," बैरा उसकी बात पर थोड़ा [illegible] दिया।

इससे लड़की की नीली आँखों में संकोच की हल्की लहर दौड़ गयी। वह अब बदले हुए स्वर में मुझ से बोली, "आपको कोयला तो नहीं चाहिए?"

"नहीं" मैंने कहा।

"चौदह आने का किल्टा दूँगी, कोयला देख लो," कहते हुए उसने अपनी चादर की तह में से एक कोयला निकाल कर मेरी तरफ़ बढ़ा दिया।

"ये यहाँ आकर खाना खाते हैं, इन्हें कोयला नहीं चाहिए," अब बैरे ने उसे झिड़क दिया।

"आपको खाना बनाने के लिए नौकर चाहिए?" मगर लड़की बात करने से नहीं रुकी। "मेरा छोटा भाई है। सब काम जानता है। पानी भी भरेगा, बरतन भी मलेगा...।"

"तू जाती है यहाँ से कि नहीं?" बैरे का स्वर अब दुतकारने का-सा हो गया।

"आठ रुपये महीने में सारा काम कर देगा," लड़की उस स्वर को महत्त्व न देकर कहती रही। "पहले एक डाक्टर के घर में काम करता था। डाक्टर अब यहाँ से चला गया है...।"

बैरे ने अब उसे बाँह से पकड़ लिया और बाहर की तरफ ले जाता हुआ बोला, "चल-चल जाकर अपना काम कर। कह दिया है उन्हें नौकर नहीं चाहिए, फिर भी बके जा रही है !"

"मैं कल इसी वक़्त उसे लेकर आऊँगी," लड़की ने फिर भी चलते-चलते मुड़कर कह दिया।

बैरा उसे दरवाज़े से बाहर पहुँचाकर वापस आता हुआ बोला, "कमीन जात ! ऐसे गले पड़ जाती हैं कि बस...!"

"खाना अभी कितनी देर में लाओगे ?" मैंने उससे पूछा।

"बस जी पाँच मिनट में लेकर आ रहा हूँ," वह बोला। "आटा गूँधकर रख आया हूँ। ज़रा नमक ले आऊँ—आकर चपातियाँ बनाता हूँ।"

ख़ैर खाना मुझे काफ़ी देर से मिला। खाने के बाद मैं काफ़ी देर ठण्डी-गरम सड़क पर टहलता रहा क्योंकि पहाड़ियों पर छिटकी चाँदनी बहुत अच्छी लग रही थी। लौटते वक़्त बाज़ार के पास से निकलते हुए मैंने सोचा कि नाश्ते के लिए सरदार नत्थासिंह से दो अंडे उबलवा कर लेता चलूँ। दस बज चुके थे, पर नत्थासिंह की दुकान अभी खुली थी। मैं वहाँ पहुँचा, तो नत्थासिंह और उसके दोनों बेटे पैरों भार बैठे खाना खा रहे थे। मुझे देखते ही बसन्ते ने कहा, "यह लो, आ गये भाई साहब !"

"हम कितनी देर इंतज़ार कर-करके अब खाना खाने बैठे हैं!" हरबंस बोला।

"ख़ास आपके लिए मुर्ग़ा बनाया था," नत्थासिंह ने कहा। "हमने सोचा था कि भाई साहब देख लें हम कैसा खाना बनाते हैं। ख़याल था दो-एक प्लेटें और लग जाएँगी। पर न आप आये, और न किसी और ने ही मुर्ग़े की प्लेट ली। हम अब तीनों ख़ुद खाने बैठे हैं। मैंने मुर्ग़ा इतने चाव से, इतने प्रेम से, बनाया था कि क्या कहूँ ! क्या पता था कि ख़ुद ही खाना पड़ेगा। ज़िन्दगी में ऐसे भी दिन देखने थे ! वे भी दिन थे जब अपने लिए मुर्ग़े का शोरबा तक नहीं बचता था ! और एक दिन यह है। भरी हुई पतीली सामने रखकर बैठे हैं ! गाँठ से साढ़े तीन रुपये लग गये, जो अब पेट में जाकर खनकते भी नहीं ! जो तेरी करनी मालिक !"

इसमें मालिक की क्या ग़लती है ?" बसन्ता ज़रा तीखा होकर बोला।
"तो ग़लती है, सब अपनी ही है ! आप ही को जोश आ रहा था कि लड़ाई शुरू हो गयी है, लोग आने लगे हैं, कोई अच्छी चीज़ बनानी चाहिए। मैंने कहा था कि अभी आठ-दस दिन ठहर जाओ, ज़रा लड़ाई का रुख़ देख लेने दो। पर नहीं माने ! कहने लगे कि अच्छी चीज़ से महूरत करेंगे तो सीज़न अच्छा गुज़रेगा। लो, हो गया महूरत !"

इसी समय वह आदमी, जो कुछ घंटे पहले मुझे शेयरिंग क्रॉस पर मिला था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया। अँधेरे में उसने मुझे नहीं पहचाना और कुर्सी पर हाथ देकर नत्थासिंह से पूछा, "नत्थासिंह, एक ग्राहक भेजा था, आया था ?"

"कौन ग्राहक ?" नत्थासिंह चिढ़े मुरझाये हुए स्वर में बोला।

"घुँघराले बालों वाला नौजवान था—मोटे शीशे का चश्मा लगाये हुए . . . ?"

"ये भाई साहब खड़े हैं !" इससे पहले कि वह मेरा और वर्णन करता, नत्थासिंह ने उसे होशियार कर दिया।

"अच्छा आ गये हैं !" उसने मुझे लक्ष्य करके कहा और फिर नत्था-सिंह की तरफ़ देखकर बोला, "तो ला नत्थासिंह, चाय की प्याली पिला।"

कहता हुआ वह सन्तुष्ट भाव से अन्दर टीन की कुरसी पर जा बैठा। बसन्ता भट्ठी पर केतली रखते हुए जिस तरह से बुदबुदाया उससे जाहिर था कि वह आदमी चाय की प्याली ग्राहक भेजने के बदले में पीने जा रहा है !

शिकार

दादर, बांदरा, सैंटाक्रुज, अंधेरी—अंधेरी, सैंटाक्रुज, बांदरा, दादर—वही स्टेशन बार-बार आते और निकल जाते। पटवर्द्धन दरवाजे के पास खड़ा-खड़ा चर्चगेट से अंधेरी तक गया था, अंधेरी से ग्रांट रोड तक आया था, ग्रांट रोड से फिर अंधेरी तक गया था और अब दूसरी बार अंधेरी से लौट रहा था। आज कुछ-न-कुछ हासिल करना उसके लिए जरूरी था। बृहस्पति, शुक्र और शनीचर तीन दिन खाली निकल गये थे। पैसे हाथ में रहते दस दिन भी मौके का इन्तजार करना पड़ता, तो उसे उतावली न होती। वह खामखाह अपने को मुसीबत में डालने के हक में नहीं था। मगर बुधवार को पंद्रह रुपये जुए में हारकर उसके पास कुल डेढ़ रुपया बच रहा था, जिससे उसने किसी तरह अब तक का काम चलाया था। इस वक्त उसके पास सिर्फ दो इकन्नियाँ थीं। रात की रोटी के लिए कुछ-न-कुछ पैदा करना जरूरी था।

पिछली दादर फास्ट गाड़ी में उसका काम बनते-बनते रह गया था। ग्रांट रोड से उस गाड़ी में बहुत-से लोग चढ़े थे और दरवाजे के पास इतनी भीड़ हो गयी थी कि कंधा हिलाना भी मुश्किल था। उस भीड़ में एक पारसी की जेब उसकी बाँह के साथ सट गयी थी। पटवर्द्धन ने स्पर्श से ही जान लिया था कि उस जेब में चालीस-पचास के नोट हैं। वह तेज गाड़ी न होती, तो सैंट्रल स्टेशन पर ही वह पारसी की जेब साफ करके उतर गया होता। सिर्फ बाहर निकलने के एक हल्के की जरूरत थी। मगर गाड़ी सात स्टेशन छोड़कर बांदरा रुकी, और इस बीच न जाने कैसे पारसी को कुछ सदेह-सा हो गया जिससे स्टेशन आने पर वह पैसों वाली जेब पर हाथ रखे हुए नीचे उतरा। पटवर्द्धन उसी तरह दरवाजे से टेक लगाये खड़ा रह गया जैसे ग्रांट रोड से बांदरा तक आया था।

इस बार अंधेरी स्टेशन पर उसने गाड़ी बदली, तो उसे टाँगों में थकान महसूस हो रही थी। उसे खड़े-खड़े सफर करते तीन घण्टे से ज्यादा वक्त

हो चुका था । अब भी उसे वहीं रहना था क्योंकि उसका काम गाड़ी के दरवाज़े के पास ही बन सकता था । काम का मौक़ा वे कुछ ही क्षण होते थे जब अन्दर आने और बाहर आने वालों के बीच संघर्ष होता था । थकान के कारण पटवर्द्धन ने निश्चय किया कि वह दादर स्टेशन से चाय पीकर फिर कोई दूसरी गाड़ी पकड़ेगा ।

[illegible] पर रुकने के बाद गाड़ी में भीड़ हो गयी । पटवर्द्धन की आँखें एक नवयुवक के चेहरे पर कुछ क्षणों के लिए रुकीं । नवयुवक उसके बहुत पास खड़ा था । पटवर्द्धन को नवयुवक के चेहरे की रेखाएँ बहुत आकर्षक लगीं । उसके अस्तव्यस्त घुंघराले बालों और हैरान-सी बड़ी-बड़ी आँखों में उसे कुछ मासूमियत लगी । वह ऐसे लोगों में से था जिनके साथ खामखाह बात करने को मन हो आता है । उसे जैसे अपने चारों तरफ़ हर चीज़ अच्छी लग रही थी । पटवर्द्धन उसके चेहरे से आँखें हटा कर बाहर फैली रेल की पटरियों को देखने लगा ।

बांदरा निकल गया । गाड़ी माहिम स्टेशन पर रुकने लगी तो नवयुवक ने पास खड़े एक व्यक्ति से पूछा कि माटुंगा जाने के लिए उसे दादर से कौन-सी बस पकड़नी चाहिए । पटवर्द्धन को उसका बात करने का लहजा भी आकर्षक लगा । उसे ईर्ष्या हुई कि नवयुवक उससे न पूछकर दूसरे व्यक्ति से क्यों पूछ रहा है । उससे पूछता, तो वह खुद जाकर उसे बस स्टाप तक छोड़ आता ।

नवयुवक ने जिससे पूछा था उसे खुद पता नहीं था कि दादर से माटुंगा के लिए कौन-सी बस मिलती है । उस व्यक्ति ने पटवर्द्धन से पूछा । पटवर्द्धन ने सीधे नवयुवक को उत्तर दिया कि उसे स्टेशन से निकल कर 'जे' रूट की बस पकड़नी चाहिए । फिर कुछ क्षण रुककर उसने पूछा, "आप बम्बई में नये आये हैं ?"

"हाँ, कल ही आया हूँ," नवयुवक ने मुसकराकर उत्तर दिया ।

"काम से या सिर्फ़ घूमने के लिए ?"

"काम की तलाश में आया हूँ," कहते हुए नवयुवक ने अपना निचला होंठ ज़रा-सा काट लिया । फिर उसने पटवर्द्धन से पूछा, "आप यहीं रहते हैं ?"

"मैं पिछले पाँच साल से यहाँ हूँ," कहते हुए पटवर्द्धन थोड़ा अव्यवस्थित हो गया।

"क्या काम करते हैं ?"

"ग्राट रोड पर मेरी जुराबों की फ़ैक्टरी है।" यह उन अनेक उत्तरों में से था जो यह सवाल पूछे जाने पर वह लोगों को दिया करता था। उसे इसके लिए सोचना नहीं होता था। अनायास ही कभी वह कह देता था कि वह एक दवाई-कम्पनी का सेल्समैन है। कभी कि जूते बनाने वालों को चमड़ा सप्लाई करता है। हर बात वह बहुत स्वाभाविक ढंग से कहता था। मगर उस समय उसे अपना स्वर कुछ अस्वाभाविक-सा लगा। उसकी आँखें नवयुवक के चेहरे से हट गयीं।

पास ही एक पाँच-छः साल की बच्ची अपने पिता का हाथ पकड़े खड़ी थी। वह पटवर्द्धन के मैले कपड़ों से अपनी वायल की नयी फ़्राक बचाये रखने के लिए अपने पिता से सटी जा रही थी। बच्ची के होंठ बहुत पतले और सुन्दर थे। गरदन की हल्की रेखाएँ जीवित धारों की याद दिलाती थीं। वह नवयुवक भी उस बच्ची को देख रहा था। बच्ची से आँख मिलने पर एक बार उसने प्यार से उसकी ठोड़ी को सहला दिया। बच्ची मुसकरायी। पटवर्द्धन अन्दर आँखें हटाकर फिर बाहर की तरफ़ देखने लगा। दूसरी तरफ़ से आती एक लोकल गाड़ी धड़धड़ाती पास से निकल गयी। रेल की पटरियाँ तेज़ी से पीछे की तरफ़ जा रही थीं। कहीं-कहीं पटरियों में बत्तियाँ के साये नज़र आ जाते। एक पुल तेज़ी से निकल गया जिस पर दुनिया और ही गति से चल रही थी। गाड़ी की चाल धीमी होने लगी। दादर स्टेशन आ गया था।

गाड़ी के स्टेशन पर रुकते ही भीड़ का दबाव बढ़ गया। उतरने की कोशिश में नवयुवक का शरीर पटवर्द्धन के शरीर के साथ सट गया। स्पर्श के पहले ही क्षण में पटवर्द्धन ने जान लिया कि नवयुवक की जेब में चमड़े का एक बटुआ है, जिसमें दस-दस या पाँच-पाँच के बारह-तेरह नोट हैं। बाहर से आने वालों की जल्दबाज़ी के कारण गाड़ी से उतरना मुश्किल हो रहा था। नवयुवक बच्ची को हाथ का सहारा दिये हुए था। कुछ लोगों के टोकरियाँ लिये हुए अन्दर आ जाने से कसमसाहट और भी बढ़ गयी।

पटवर्द्धन [illegible] प्लेटफ़ार्म पर उतर गया। नवयुवक बच्ची को हाथों में उठाये हुए उतरा। बच्ची को उसके पिता को सौंपकर उस आदमी से हाथ मिलाया और वह पुल की तरफ़ बढ़ने लगा।

पटवर्द्धन चाय के स्टाल के पास खड़ा था। उसकी नजर नवयुवक का पीछा कर रही थी। गाड़ी झटके के साथ चल पड़ी। पटवर्द्धन के पैर उसकी ओर बढ़ना चाहते, पर प्लेटफ़ार्म पर इतने लोग खड़े थे कि दौड़ते हुए कहीं पहुँच सकना इतना आसान नहीं था। गाड़ी की घड़घड़ाहट हवा में फैलकर विलीन हो गयी। पटवर्द्धन की नजर पुल की तरफ़ गयी। नवयुवक पुल पार कर रहा था। फिर सीढ़ियों में उस भीड़ के रेले में अदृश्य हो गया।

पटवर्द्धन की नजर चाय के स्टाल पर रुकी। एक आदमी जल्दी-जल्दी चाय की प्यालियाँ भरकर पत्थर के काउण्टर पर रखता जा रहा था। पटवर्द्धन को लगा जैसे आसपास पहले से ज्यादा खामोशी छा रही है। सहसा दूर से एक गाड़ी का शब्द सुनाई देने लगा। एक दादर फ़ास्ट गाड़ी तेज़ी से सामने से निकल गयी। गाड़ी के निकल जाने पर पटवर्द्धन को लगा कि वह अपने आसपास लगातार गाड़ी की घड़घड़ाहट चाहता है, साथ चारों तरफ़ से भीड़ का दबाव चाहता है, और...।

ग्रांट रोड जाने वाली दूसरी गाड़ी में छः-सात मिनट की देर थी। पटवर्द्धन पतलून की जेबों में हाथ डाले खड़ा था। उनका बायाँ हाथ दो इकन्नियों को सहला रहा था और दायाँ हाथ चमड़े के बटुवे को जिसमें अन्दाजन दस-दस के या पाँच-पाँच के बारह-तेरह नोट थे।

सिग्नलों की रंगीन रोशनियाँ जैसे एकटक उसी की तरफ़ देख रही थीं। आसपास खड़े लोगों के स्वर की गूँज भी जैसे उसी के चारों तरफ़ मँडरा रही थी। उसे अच्छा लग रहा था कि स्टाल वाला लगातार चाय की प्यालियाँ भरकर काउण्टर पर रखता जा रहा था जिससे उँडेली जा रही चाय में से निकलती भाप के हल्के-हल्के छल्ले बार-बार सामने आकर ओझल हो जाते थे और सफ़ेद पत्थर से प्यालियों के टकराने का शब्द लगातार सुनाई देता रहता था।

बत्तियों की रोशनी में प्लेटफ़ार्म के पत्थर चमक रहे थे। पास से निकलते

लोगों की टिगनी-तिरछी छायाएँ पत्थरों के अन्दर चलती प्रतीत होती थीं। पटवर्द्धन के मस्तिष्क में भी कई-कई छायाएँ चल-फिर रही थीं ...।

बड़ी-बड़ी इमारतें, बसें, ट्रामें, इन्सान और शीशे के शो-केसों में बन्द डबल रोटियाँ.. ।

फैली हुई सड़कें और गाड़ियों के घूमते हुए पहिये .. ।

रात को फुटपाथ पर इकट्ठे होते हुए लोग—मजदूर, भिखमंगे, जेब-कतरे, रण्डियों के दलाल—पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे ...।

एक बच्चा रो रहा है ...।

एक व्यक्ति जिसके चेहरे का मांस सूख गया है और जिसकी आँखें गोल-गोल दिखाई देती हैं, खम्भे से टेक लगाये बीड़ी पी रहा है ...।

एक किश्तीनुमा कार पास से फिसलती हुई निकल जाती है ...।

बीड़ी पीने वाला फैली हुई आँखों से कार का पीछा करता है, और आधी पी हुई बीड़ी बुझाकर जेब में रख लेता है।

"मजदूर !" कोई आवाज देता है।

फुटपाथ से दस-पन्द्रह आदमी दौड़ पड़ते हैं।

एक स्त्री जिसकी उम्र का कुछ अनुमान नहीं होता, लेटी हुई कराह रही है ...।

एक युवक जिसकी बनियान में जगह-जगह सूराख हैं, बाँह खुजलाता हुआ कह रहा है, "मधुबाला मधुबाला है प्यारे ! उसका एक क्लोजअप देखकर ही सब पैसे वसूल हो जाते हैं ...।"

एक तरफ से शोर सुनाई देता है—महमूद ने निम्बालकर के चाकू मार दिया ...।

"ये लोग वहशी हैं" कोई किसी से कहता है।

एक पत्थर ट्राम की खिड़की से टकराता है ...।

पुलिस का सिपाही उसे घसीटकर ले जा रहा है। वह चिल्ला रहा है, "नहीं, मैं नहीं था ! मैं नहीं था !"

गाड़ी में भीड़ का दबाव बढ़ रहा है। घुँघराले बालों वाले नवयुवक का शरीर उसके शरीर के साथ सट गया है। नवयुवक हाथ से बच्ची को सहारा दिये हुए है ...।

सिगनल की बत्ती का रंग बदल गया ।

पटवर्द्धन का ध्यान फिर चाय के स्टाल की तरफ़ चला गया । स्टाल वाला उसी तरह चाय की प्यालियाँ भर-भरकर काउण्टर पर रखता जा रहा था । केतली और प्यालों में से निकलती भाप के हल्के-हल्के छल्ले बार-बार दिखाई देते और ओझल हो जाते थे ।

गाड़ी आ रही थी ।

पटवर्द्धन का हाथ बायीं जेब में पड़े हुए बटुए को सहला रहा था ।

गाड़ी प्लेटफ़ार्म पर आ गयी ।

गाड़ी ने सीटी दी और चल पड़ी ।

पटवर्द्धन का मन चाह रहा था कि जिन्दगी लौटकर कुछ मिनट पहले के उस मुक़ाम पर चली जाय जब उसके चारों तरफ़ भीड़ का दबाव बढ़ रहा था, पर उसका हाथ अभी नवयुवक की जेब तक नहीं पहुँचा था ।

गाड़ी के आगे डब्बे निकल गये थे ।

तभी उसने देखा कि घुंघराले बालों वाला नवयुवक घबराया-सा पुल की सीढ़ियाँ उतर कर आ रहा है ।

गाड़ी का अन्तिम डब्बा निकल रहा था ।

सहसा पटवर्द्धन की टाँगों में जान आ गयी । वह दौड़ा और गाड़ी के आखिरी डब्बे के फ़ुटबोर्ड पर लटक गया । पल भर में पुल दूर हो गया, प्लेटफ़ार्म पीछे रह गया, और नवयुवक का चेहरा आँखों से ओझल हो गया ।

अब फिर रेल की पटरियाँ तेज़ी से पीछे की तरफ़ जाती दिखाई दे रही थीं । गाड़ी की एक बत्ती की पटरी पर पड़ती हुई रोशनी गाड़ी के साथ-साथ चल रही थी । पटवर्द्धन का दायाँ हाथ फ़ुटबोर्ड के डंडे को पकड़े था और बायाँ हाथ जेब में पड़े बटुए को सहला रहा था । ।

मगर अब उसका मन चाह रहा था कि जिन्दगी लौटकर उस मुक़ाम पर चली जाय जब गाड़ी का आखिरी डब्बा निकल रहा था और वह अभी प्लेटफ़ार्म पर ही था ।

अन्दर कोई किसी से कह रहा था, कि वह फ़ास्ट गाड़ी है जो सीधी ग्रांटरोड जाकर रुकेगी ।

खँडहर

सड़क की बत्तियाँ बुझ गयीं।

बरफ के कारखाने का भोंपू भोंड़े स्वर में सुबह की चेतावनी देकर चुप हो गया।

अभी पहला कौआ भी नहीं बोला था कि किला मगियों के चौराहे पर तिल कूटनेवालों का शब्द अपने निश्चित स्वर-ताल में गूंजने लगा—हियें, अ-अः! हियें: अ-अः! हियें अः-अः!

छः गठे हुए गठुमी शरीर, उनकी उभरी हुई पेशियाँ और चमकती हुई त्वचाएँ, हाथों में उठते-गिरते मूसल, बीच में कुटते तिलों का अबार—ये सब और चारों तरफ की घुटी हुई हवा, सारा वातावरण ही बोल रहा था—हियें अ-अः! हियें अः-अः!

और तिलों [illegible]

आधी चाहे मूसरी, [illegible]

पाकर वे फिर अ[illegible]

उसे फिर कूटेंगे और सिलसिला चलता रहेगा।

उधर सड़क पर लेटा हुआ सांड़, जिसकी आजीविका भक्तों के खिलाये गो-ग्रासों से चलती थी, और जिसे इसके लिए सुबह-शाम नमकमण्डी तक के घरों का चक्कर काटना होता था, धीरे से अपनी टाँगों पर खड़ा हुआ, और पूंछ हिला कर चलने के लिए तैयार हो गया।

तभी एक हरिकीर्तन करता वृद्ध मण्डानवाले बाजार की तरफ से आया। गोपुत्र को कान हिलाते देखकर उसने उसे प्रणाम किया। फिर बिना तिल कूटनेवालों की तरफ देखे, बिना उनकी जांघों की मछलियाँ लक्ष्य किये, खाँसता, थूकता, खँखारता और साँस आने पर हरिकीर्तन करता बाबा बांके बिहारी के मन्दिर में चला गया।

उस सँकरी गली से, जिसका कोई नाम नहीं, और जिसकी नालियों की बदबू बाबा बांके बिहारी के मन्दिर के धूप-गुग्गुल की गन्ध में मिलकर

[illegible] है, [illegible] प्रौढ़ा अपनी [illegible] वहाँ से गुजरी जहाँ [illegible] रहा था, [illegible] था और प्रसन्न हो रहा था। [illegible] शरीर थे और पसीना-ही-पसीना था। उसे [illegible] में उबल रहा था। उसे [illegible] जल्दी-जल्दी जाकर बाँके बिहारी के मन्दिर में चली गयी।

शहर अमृतसर रात की नींद से जाग रहा था।

मदन हलवाई की दुकान अभी खोली गयी थी। उसका नौकर नगीना अपनी मैली-कुचैली कमीज में, जो जब सिली तब सफेद थी, और जब उसे [illegible] उस खास रंग की थी जो इन्सान की मैल और धूल से तैयार होता है, रात की मंजी हुई बाटियों को मटके के पानी से धो-धोकर [illegible] रहा था। साबुन-मिला पानी लकड़ी के गले हुए फट्टे पर से फिसल कर धार के या बूँदों के रूप में गिरता हुआ उस बेंच को भिगो रहा था जो सड़क पर ग्राहकों की सेवा और सुविधा के लिए रखी गयी थी।

हलवाई के सामने की दूकान का भोलूशाह दस दिन की उगी सफ़ेद दाढ़ी के नीचे पिचके हुए झुर्रीदार गालों को फैलाकर घण्टा भर चबाई दातुन से अन्दर गले तक की झाग निकालने की कोशिश में परेशान होकर जोर-जोर से उबकार रहा था—आऽऽक्! आऽऽक्! आऽऽक्!

आऽऽक् आऽऽक् आऽऽक् में वह गले, छाती और आसन का जोर लगा रहा था। उसका बाप भी इसी तरह करता था। बाप का बाप भी इसी तरह करता था। अमृतसर वह शहर है जहाँ दातुन करने की ही नहीं, थूकने-खुजलाने की भी विशेष शैली है और उस शैली का उस शहर जितना ही पुराना इतिहास है।

भोलूशाह के मुँह से लार निकल रहा था और सड़क पर झाड़ू देते हुए भंगी की उड़ाई धूल उसके नासा-रंध्रों में जा रही थी। फिर भी भोलूशाह एकचित्त होकर जीभ और तालु का व्यायाम किये जा रहा था। उसकी कला कला के लिए थी।

धूल मोलूशाह के बड़न-खाये शरीर को ढककर आगे बढ़ी और भक्तों के उस समुदाय में पहुँच गयी जो मंगला-दर्शन के लिए बाबा बाँके बिहारी के मंदिर की दहलीज के पास जमा हो रहा था। वृद्ध का शरीर मारे खाँसी के दोहरा हो गया। हरे दोपट्टेवाली लड़की ने मुँह एक तरफ हटाकर धूल से बचने की चेष्टा की। उधर से उसे वृद्ध के मुखामृत का छींटा मिला। उसने मुँह दोपट्टे में छिपा लिया।

उधर सामने कुएँ की चर्खी पर एक लाल लँगोट वाले की गागर ने उषा का पहला राग छेड़ दिया।

पर अभी भगवान् के दर्शन खुलने में देर थी। भगवान् के पुजारी गोस्वामी नृसिंहदत्त ने छत की पिछली कोठरी में शरीर से कम्बल उतारा ही था। अस्त-व्यस्त अँगोछे को, जो सोने के समय उसका एकमात्र परिधान था, कसकर कमर से लपेटते हुए उसने मंगला का पहला मंत्र पढ़ा "बेतू, कहाँ मरा है रे ?"

बेतू, जो नीचे लँगोट लँगाये और ऊपर खादी की कमीज पहने साथ की कोठरी की दीवार के सहारे ऊँघ रहा था, गुरु की कर्कश आवाज सुनते ही अपने को झटककर सचेत हो गया और झुक-झुककर संस्कृत व्याकरण का पाठ करने लगा—"इको यणचि . . . इकः स्थाने यण् स्यादचि परे संहितायां विषये . . .।

"इधर आ रे यणचि के यण्!" गोस्वामी नृसिंहदत्त ने मंत्र पूरा किया, "हुक्का भर जल्दी से।"

बारह साल का बेतू तत्परता से उठ पड़ा। उसे मंदिर में रहते कई महीने हो चुके थे। वह पुजारी की गालियों से ही नहीं, उसकी मार से भी पूरी तरह परिचित था। गोस्वामी जब भी कोई धमकी देता, बेतू के दिमाग में एक भँवर-सा घूमने लगता। उसके मन में आता था कि गोस्वामी की नाक को पकड़ कर इतना खींचे इतना खींचे कि गोस्वामी का गणेश बन जाय, मगर उसका साहस नहीं पड़ता था क्योंकि गोस्वामी उसे रोटी देता था, कपड़ा देता था, और सबसे बड़ी चीज़ विद्या देता था। रात को गोस्वामी उसे बड़ी रुचि के साथ अलवार पढ़ाया करता था और हाथ से आकार

[illegible] था कि [illegible] नारी को '[illegible]' कहते हैं, और [illegible] नारी को 'पद्मिनी' कहते हैं। चेतू [illegible] मंदिर में आने वाली युवतियों की छातियों [illegible] देखा करता था कि उनमें से कौन-सी 'श्यामा' है और कौन-सी 'पद्मिनी'। फिर वह [illegible] पर उन [illegible] की तस्वीरें बनाया करता था।

चेतू, जिसका असली नाम चेतनराम था, मोगा तहसील के एक छोटे-से गांव का रहनेवाला था। कुछ महीने पहले तक वह सतलुज के किनारे खड़ा होकर उस पार से आनेवाले कबूतरों के झुण्डों को देखा करता था। उसे [illegible] पानी की [illegible] लहरों पर बादलों की घनी छायाएँ बहुत अच्छी लगा करती थीं। पर उसके नाना ने एक दिन "लघु सिद्धान्त कौमुदी" हाथ में देकर उसे शास्त्री प्रीतम देव के पास पढ़ाई के लिए अमृतसर भेज दिया। यहां आकर उसने जो दुनिया देखी, उसमें कबूतर बिजली के तारों पर बैठे रहते थे और बादल कभी आ जाते, तो पक्की छतों के ऊपर गरज-बरसकर और काले छातों को भिगोकर चले जाते थे। हां, गांव में वह सिर्फ़ रात को ही 'हीर' और 'माहिया' के गीत सुना करता था, पर यहां दोपहर को भी, जब लाला लोग भल्ले, पकौड़ी और तले हुए बेसन के साथ रोटी खाकर विश्राम के लिए लेटते, तो चारों तरफ़ से रेडियो पर "दर्द भरे फ़साने" सुनायी देते रहते थे।

चेतू ने जब तक हुक्का भरकर गोस्वामी को दिया, तब तक शास्त्री प्रीतमदेव की आंख भी खुल गयी थी। शास्त्री प्रीतमदेव का मंदिर में वही स्थान था जो घरों में उस पुराने बर्तन का होता है जिसमें कई साल तक पानी पिया जा चुका हो और जिसकी सतह में अब जगह-जगह सूराख हो गये हों। उसने लगातार बारह साल तक मंदिर में रहकर ज्योतिष और मीमांसा का अध्ययन किया था और उसका वह सारा ज्ञान इस काम आता था कि दोनों समय ठाकुर जी के सामने शंख और घण्टी बजाया करे।

गोस्वामी हुक्का गुड़गुड़ाता और विष्णु-सहस्र-नाम का पाठ करता हुआ अपनी कोठरी से बाहर निकला। उसे आते देखकर शास्त्री प्रीतमदेव भी धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा :

"जय हनुमान् ज्ञान गुण सागर।
जय कपीस तिहुँ लोक उजागर॥"

गोस्वामी अपना पाठ अधूरा छोड़कर, हुक्का ज़मीन पर रखता हुआ शास्त्री प्रीतमदेव के पास आकर बैठ गया। उसके पास आ बैठने से शास्त्री की आवाज़ बंद हो गयी, सिर्फ़ उसके होंठों का हिलना जारी रहा।

मिनट दो मिनट चुप रहने के बाद गोस्वामी ने मुलायम आत्मीयता-भरे स्वर में पूछ लिया, "रात कितने बजे लौटकर आये थे?"

शास्त्री के होंठ कुछ देर और चुपचाप हिलते रहे। पाठ पूरा करने के बहाने थोड़ा अवकाश लेकर उसने हवा को माथा नवाया, और गोस्वामी की घूरती आँखों से बिना आँखें मिलाये उत्तर दिया, "नौ बजे, गुरुजी!"

शास्त्री प्रीतमदेव गोस्वामी को 'गुरुजी' कहा करता था क्योंकि किताबी विद्या चाहे उसने सागरमल विद्यालय में पायी थी, पर असली विद्या उसे भी गोस्वामी से ही मिली थी।

"दस-ग्यारह बजे तक तो मैं ही जाग रहा था।" गोस्वामी ने सहज स्वर में कहा जिसका मतलब था कि जा, एक झूठ माफ़ किया, अब और झूठ बोलने की कोशिश मत करना।

"तो ज़रा देर हो गयी होगी!" अब भी शास्त्री ने गोस्वामी से आँखें मिलाने का साहस नहीं किया।

"रंगवाला सेठ भगत आदमी है।" गोस्वामी असली बात पर आ गया। "खिलाया-पिलाया तो उसका पूछना ही क्या है!"

और गोस्वामी ने उसे सीधी नज़र से देखा। रात को रंगवाले सेठ किशनदास की लड़की का ब्याह था। जाना वहाँ गोस्वामी को खुद ही था क्योंकि वह रंगवाले सेठों का कुलपुरोहित था, पर कल शाम को उसके शरीर में हवा का दौरा बढ़ गया था जिस वजह से उसने अपनी जगह शास्त्री प्रीतमदेव को भेज दिया था। दौरे की वजह से ही उसे रात को ग्यारह बजे नींद की गोली खाकर सो जाना पड़ा था, नहीं तो ये सवाल-जवाब वह रात को ही कर चुका होता।

शास्त्री प्रीतमदेव अभी तक उससे आँखें चुरा रहा था। उसने गोस्वामी के सवाल का छोटा-सा जवाब दिया, "बड़ा सुन्दर भोजन बना था!"

[illegible] कहा, "गुरुजी, मंगल दर्शन कितनी देर में खुलते हैं ?"

"हाँ, कुछ आएँगे [illegible]" गोस्वामी ने अपनी अधीरता दबाने की चेष्टा करते हुए कहा। "यह बता कि सेठ ने दिया क्या-क्या है ?"

शास्त्री [illegible]। मगर, गोस्वामी की बहुतेज भरी आँखों ने उसे कुछ नहीं सोचने दिया। उसने होंठों पर ज़बान फेर कर कहा, "इक्कीस रुपया...।"

'और ?'

'और...' शास्त्री ने शब्दों को ज़रा लंबा करते हुए कहा, "...एक कपड़ा।"

"क्या कपड़ा ?"

"धो...दोशाला।"

"और कुछ नहीं ?"

"नहीं।"

"[illegible], कहाँ है ?"

"अभी दिखाऊँ ?"

"और कोई मुहूर्त निकलवाना है ?"

शास्त्री न चाहता हुआ भी उठा, और पिछले कोने में रखे घिसे-'पुराने संदूक़ की घिसी-पुरानी ताली को उसने ठोंक-पीट कर खोला। सन्दूक़ के अन्दर से अपना अँगोछा निकाल कर उसने माथे का पसीना पोंछा, फिर सन्दूक़ के अन्दर ही हाथों से कुछ कारसाजी करने लगा, जब गोस्वामी उसके सिर पर आ खड़ा हुआ। गोस्वामी के सिर पर आ जाने से वह दोशाले की तह में रखी धोती और धोती की तह में रखे रेशमी रुमाल को छिपा नहीं सका।

"साले, झूठ बोलता था ?" गोस्वामी ने शास्त्री की खोपड़ी पर धौल जमाकर कहा, और कपड़े उससे लेकर बोला, "ला रुपये भी निकाल।"

"रुपये भी क्या मेरे नहीं हैं, गुरुजी ?" शास्त्री का नपुंसक साहस पहली बार बोला।

"तेरे नहीं, तेरी..." और वाक्य को अधूरा छोड़कर गोस्वामी

आगे बोला, "तू रायवाले सेठों का जमाई है न! वे भगवान् के जीव हैं, सो भगवान् के निमित्त दे देते हैं। तू साले, रोज भगवान् के घर में नारंगियाँ-केले खाता है, दूध-दही भक्षण करता है, फिर भी तेरी तृष्णा नहीं मरती? यहाँ अब देने-वाले रहे कितने हैं? जो आता है, मुफ्त में ही भगवान् के दर्शन करके चला जाता है। ला निकाल, रुपये कहाँ हैं?"

शास्त्री प्रीतमदेव ने सन्दूक मे रखे अपने एक-मात्र कोट की जेब मे हाथ डालते हुए कहा, "दो रुपये तो मुझसे गुरुजी खर्च हो गये है।"

"खर्च हो गये हैं? कहाँ खर्च हो गये हैं?"

शास्त्री ने जेब से उन्नीस रुपये दो आने निकाल कर गोस्वामी की तरफ़ बढ़ा दिये, और जमीन की तरफ देखते हुए कहा, "सिनीमा चला गया था।"

"सिनीमा चला गया था!" गोस्वामी ने रुपये उससे लेते हुए कहा, और उसकी खोपड़ी पर एक और धौल जमा कर दोहराया, "सिनीमा चला गया था।"

गोस्वामी अब अपनी कोठरी की ओर जाने के लिये मुड़ा, तो शास्त्री ने पीछे से दीन स्वर में कहा, "मेरे पास एक भी धोती नहीं है, गुरुजी!"

"यह जो पहने है, यह धोती नहीं है?" गोस्वामी ने उसे कुत्ते की तरह दुतकारा।

"यह तो बिल्कुल फट गयी है, गुरुजी! यह आज वाली नहीं, तो वह पारो वाली धोती ही दे दीजिए।"

गोस्वामी रुक गया। पारो का नाम लेकर शास्त्री ने जैसे उसे चुनौती दे दी थी कि एक धोती दे दो, हाँ, वरना...।

"कौन-सी पारो वाली धोती?" गोस्वामी ने कौवे परखी उपवार के साथ पूछा।

शास्त्री की नाभि के पास से मुसकराहट उठी जिससे उसकी छाती फूल गयी। पर उसका गला इतना खुश्क हो रहा था कि मुसकराहट होठों तक नहीं आ पायी।

"पता नहीं...उस दिन पारो बह रही थी...।"

"क्या बह रही थी तुम्हारी पारो?"

११-

[illegible] का [illegible] का [illegible] फिर भर आया । पर [illegible] उसके होंठों पर नहीं फैला, उसकी आँखों में भर गया ।

'[illegible] शास्त्री जी, पर आपने यह पहले [illegible], इसलिए. . ."

"[illegible] जी. . .!" और यह 'जी' कहकर गोस्वामी ने महसूस किया कि उसने [illegible] है । बिना बात को आगे बढ़ाये उसने [illegible] शास्त्री को दे दी और कहा, "तुझे धोती चाहिए, तो ले ले। पर [illegible] की आँखों पर तू [illegible] मत किया कर ।"

धोती लेकर शास्त्री के मन में इतना आनन्द उमड़ा कि विभोर होकर वह [illegible] में गाने लगा, "प्रभुजी मोरे अवगुन चित न धरो ।"

नीचे मन्दिर की दहलीज के पास भक्तों की भीड़ काफी बढ़ गयी थी । कुछ [illegible]-कुर्ते और पगड़ी वाले सज्जन थे, कुछ धोती और दोपट्टे वाली देवियाँ थीं, दो-एक, सिल्के-किनारे की साड़ी वाली नयी व्याहताएँ थीं, दो-एक खुले पाजामे और काली गोल टोपी वाले नौजवान थे, एक खुली शिखा वाला ब्रह्मचारी था, एक सोने के बटनों वाला पहलवान था, और आठ-दस—'भगवान् के अपने ही रूप'—छोटे-छोटे बच्चे ।

बाहर सड़क पर अखबार बेचने वाले चिल्ला रहे थे—मिलाप, प्रताप, ट्रिब्यून अखबार । अजीत पढ़िए, वीरभारत—ताजा-ताजा खबरें ।

"अमरीका में हाइड्रोजन बम बनने शुरू हो गये ।"

"सरहिन्द के नजदीक गाड़ी उलट गयी ।"

"पाकिस्तान ने लड़कर कश्मीर लेने की धमकी दे दी ।"

और मन्दिर के बाहर सत्तू हलवाई की दूकान पर लस्सी पीने वालों का जमघट लस्सी के साथ-साथ सत्तू की बातों का मजा ले रहा था ! सत्तू मोटे किशनचन्द से, जो इस समय अपने मोटे होंठों से लस्सी अन्दर खींच रहा था, और मन्दिर के अन्दर जानेवाली हर आकृति को घूर रहा था, कह रहा था, "रौनकें देख रहे हो, लाला जी ? देखो, देखो, बाहर से ही भगवान् के दर्शन करो । भगवान् कोई-न-कोई फल जरूर देगा ।"

बिशनदास को मुसकराते छोड़कर सत्तू ठिगने क़द के मुनीम गुराँदित्ता-

मल में बोला, "लाला गुरांदित्ताजी ! दूर क्यों खड़े हो ? इधर आओ बादशाहो ! आज बीबी ने कितनी लस्सी पीने को कहा है ? आधा सेर की, या तीन पाव की ?"

और गुरांदित्तामल को खीसें निपोरते छोड़ वह मोटे मोहनलाल से बोला, "क्यों मोहनलालजी ? मछलियाँ गिन रहे हो भगवान् के तालाब की ? कितनी हैं ? तुम जाल फेंकोगे, तो उसे तो मगरमच्छ ही ले जाएँगे। अरे यार, कुछ तो भगवान् की शरम करो। इधर आओ लस्सी पियो।"

सामने मोलूशाह किटकिट रेवड़ियाँ काट रहा था। उसके साथ का नत्थू-पंसारी मिर्चें कूट रहा था। चौराहे की दूकान पर तिल कूटने वाले अब भी उसी तरह तिल कूट रहे थे—हियँ अः-अः ! हियँ: अ-अ' !

नत्थू पंसारी मिर्चों की गंध से दो-एक बार छींका। मोलूशाह ने चाकू से अपनी उँगली काट ली। लाला किशनदास लस्सी का गिलास आधा पीकर और आधा दुम हिलाती बिल्ली के लिए छोड़कर जल्दी-जल्दी मन्दिर के अन्दर चला गया, क्योंकि दो सुन्दर लड़कियाँ उस समय अन्दर जा रही थीं।

मुनीम गुरांदित्तामल भी जल्दी-जल्दी लस्सी गले में उँडेलने लगा, क्योंकि उसकी धर्मपत्नी बसो घर से तैयार होकर आ गयी थी, और बसो का आदेश था कि वह दोनों समय नहीं तो कम-से-कम एक समय ठाकुरजी के दर्शन किया जरूर करे।

जब गुरांदित्तामल अपनी धर्मपत्नी के साथ मन्दिर के अन्दर चला गया, तो सत्तू और मोहनलाल एक-दूसरे की आँखों में देखकर मुसकराये।

"भगवान् बड़ा कारसाज है," सत्तू ने कहा। मोहनलाल ने पलकें झपकाकर इसका अनुमोदन किया।

मोहन भी चलने को हुआ तो सत्तू ने स्वर दबाकर कहा, "विलायती लट्ठा, दस थान मिला है—भेज दूँ ?"

मोहनलाल ने पलकें झपकाकर स्वीकृति दी।

"भाव वही पिछला ही है !" सत्तू ने उसी तरह कहा।

मोहनलाल ने फिर उसी तरह पलकें झपकाकर स्वीकृति दी। फिर वह और किसी तरह अपने शरीर को घसीटता और काले माथे के नीचे जड़ी लाल आँखों से आग की लौ से देखता हुआ मन्दिर के अन्दर चला गया, क्योंकि पुजारी ने किवाड़ खोल दिये थे और ठाकुरजी के जागने की घण्टी बजा दी थी।

बहुत-से लोग यहाँ-वहाँ सिर लटकाये बैठे थे जैसे किसी का मातम करने आये हों। कुछ लोग अपनी पोटलियाँ खोलकर खाना खा रहे थे। दो-एक व्यक्ति पगड़ियाँ सिर के नीचे रखकर कम्पाउण्ड के बाहर सड़क के किनारे बिखर गये थे। छोले-कुलचे वाले का रोज़गार गरम था, और कमेटी के नल के पास एक छोटा-मोटा क्यू लगा था। नल के पास कुर्सी डालकर बैठा अर्ज़ीनवीस धड़ाधड़ अर्ज़ियाँ टाइप कर रहा था। उसके माथे से बहकर पसीना उसके होठों पर आ रहा था, लेकिन उसे पोंछने की फुरसत नहीं थी। सफ़ेद दाढ़ियों वाले दो-तीन लम्बे-ऊँचे जाट, अपनी लाठियों पर झुके हुए, उसके खाली होने का इन्तज़ार कर रहे थे। धूप से बचने के लिए अर्ज़ीनवीस ने जो टाट का परदा लगा रखा था, वह हवा से उड़ा जा रहा था। थोड़ी दूर मोढ़े पर बैठा उसका लड़का अँग्रेज़ी प्राइमर को रट्टा लगा रहा था—सी ए टी कैट—कैट माने बिल्ली; बी ए टी बैट—बैट माने बल्ला; एफ ए टी फैट—फैट माने मोटा...। कमीज़ों के आधे बटन खोले और बगल में फाइलें दबाये कुछ बाबू, एक-दूसरे से छेड़खानी करते, रजिस्ट्रेशन ब्राँच से रिकार्ड ब्राँच की तरफ़ जा रहे थे। लाल बेल्ट वाला चपरासी, आस-पास की भीड़ से उदासीन, अपने स्टूल पर बैठा मन-ही-मन कुछ हिसाब कर रहा था। कभी उसके होंठ हिलते थे, और कभी सिर हिल जाता था। सारे कम्पाउण्ड में सितम्बर की खुली धूप फैली थी। चिड़ियों के कुछ बच्चे डालों से कूदने और फिर ऊपर को उड़ने का अभ्यास कर रहे थे और कई बड़े-बड़े कौए पोर्च के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलकदमी कर रहे थे। एक सत्तर-पचहत्तर की बुढ़िया, जिसका सिर काँप रहा था, और चेहरा झुर्रियों के गुंझल के सिवा कुछ नहीं था, लोगों से पूछ रही थी कि वह अपने लड़के के मरने के बाद उसके नाम एलाट हुई ज़मीन की हकदार हो जाती है या नहीं...।

अन्दर हाल कमरे में फ़ाइलें धीरे-धीरे चल रही थीं। दो-चार बाबू

[illegible] उनमें से एक दफ़्तरी [illegible] और दोस्त [illegible] कि वह ज़रूर उसने 'ग़ज़ल' या 'बेतिर्बी [illegible]' [illegible]।

"अज़ीज़ साहब, ये शेअर आपने आज ही कहे हैं, या पहले के कहे हुए शेअर आज अचानक याद हो आये हैं?" [illegible] और [illegible] आधी आँख को ज़रा-सा दबाकर पूछा। आस-पास खड़े [illegible] के चेहरे खिल उठे।

"यह बिल्कुल ताज़ा ग़ज़ल है," अज़ीज़ साहब ने अदालत में खड़े होकर हलफ़िया बयान देने के लहजे में कहा। "इससे पहले भी इसी वज़न पर कोई और चीज़ कही हो तो याद नहीं।" और फिर आँखों से सबके चेहरों को टटोलते हुए वे हल्की हँसी के साथ बोले, "अपना दीवान तो कोई शिकायती ही मुरत्तब करेगा...।"

एक फ़रमायशी क़हक़हा लगा जिसे 'शी-शी' की आवाज़ों ने बीच में ही दबा दिया। क़हक़हे पर लगायी गयी इस ब्रेक का मतलब था कि कमिश्नर साहब अपने कमरे में तशरीफ़ ले आये हैं। कुछ देर का वक़्फ़ा रहा, जिसमें गुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह की फ़ाइल एक मेज़ से एक्शन के लिए दूसरी मेज़ पर पहुँच गयी, गुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह मुसकराता हुआ हाल से बाहर चला गया, और जिन बाबू की मेज़ से फ़ाइल गयी थी, वह पाँच रुपये के नये नोट को सहलाता हुआ चाय पीने वालों के जमघट में आ शामिल हुआ। अज़ीज़ साहब अब आवाज़ ज़रा धीमी करके ग़ज़ल का अगला शेअर सुनाने लगे।

साहब के कमरे से घण्टी हुई। चपरासी मुस्तैदी से उठकर अन्दर गया, और उसी मुस्तैदी से वापस आकर फिर अपने स्टूल पर बैठ गया।

चपरासी से खिड़की का पर्दा ठीक कराकर कमिश्नर साहब ने मेज़ पर रखे ढेर-से काग़ज़ों पर एक साथ दस्तख़त किये और पाइप सुलगाकर रीडर्ज़ डाइजेस्ट का ताज़ा अंक बैग से निकाल लिया। लेटीशिया बाल्ड्रिज का लेख कि उसे इतालवी मर्दों से क्यों प्यार है, वे पढ़ चुके थे। और लेखों में हृदय की शल्य-चिकित्सा के सम्बन्ध में जे० डी० रैटक्लिफ़ का लेख

उन्होंने सबसे पहले पढ़ने के लिए चुन रखा था। पृष्ठ एक सौ ग्यारह खोल-कर वे हृदय के नये ऑपरेशन का ब्योरा पढ़ने लगे।

तभी बाहर से कुछ शोर सुनाई देने लगा।

कम्पाउंड में पेड़ के नीचे बिखरकर बैठे लोगों में चार नये चेहरे आ शामिल हुए थे। एक अधेड़ आदमी था जिसने अपनी पगड़ी जमीन पर बिछा दी थी और हाथ पीछे करके तथा टाँगें फैलाकर उस पर बैठ गया था। पगड़ी के सिरे की तरफ उससे जरा बड़ी उम्र की एक स्त्री और एक जवान लड़की बैठी थी; और उनके पास खड़ा एक दुबला-सा लड़का आस-पास की हर चीज को घूरती नजर से देख रहा था। अधेड़ मरद की फैली हुई टाँगें धीरे-धीरे पूरी खुल गयी थीं और आवाज इतनी ऊँची हो गयी थी कि कम्पाउण्ड के बाहर से भी बहुत-से लोगों का ध्यान उसकी तरफ खिंच गया था। वह बोलता हुआ साथ अपने घुटने पर हाथ मार रहा था। "सरकार वक्त ले रही है! दस-पाँच साल में सरकार फैसला करेगी कि अर्जी मंजूर होनी चाहिए या नहीं। सालो, यमराज भी तो हमारा वक्त गिन रहा है। उधर वह वक्त पूरा होगा और इधर तुमसे पता चलेगा कि हमारी अर्जी मंजूर हो गयी है।"

चपरासी की टाँगें जमीन पर पुख्ता हो गयीं, और वह सीधा खड़ा हो गया। कम्पाउण्ड में बिखरकर बैठे और लेटे हुए लोग अपनी-अपनी जगह पर कस गये। कई लोग उस पेड़ के पास आ जमा हुए।

"दो साल से अर्जी दे रखी है कि सालो, जमीन के नाम पर तुमने मुझे जो गड्ढा एलाट कर दिया है, उसकी जगह कोई दूसरी जमीन दो। मगर दो साल से अर्जी यहाँ के दो कमरे ही पार नहीं कर पायी!" वह आदमी अब जैसे एक मजमे में बैठ कर तकरीर करने लगा। "इस कमरे से उस कमरे में अर्जी के जाने में वक्त लगता है! इस मेज से उस मेज तक जाने में भी वक्त लगता है! सरकार वक्त ले रही है! लो, मैं आ गया हूँ आज यहीं पर अपना सारा घर-बार लेकर। ले लो जितना वक्त तुम्हें लेना है! ... सात साल की भुखमरी के बाद सालों ने जमीन दी है मुझे—सौ मरले का गड्ढा! उसमें क्या मैं बाप-दादों की अस्थियाँ गाड़ूँगा? अर्जी दी थी कि मुझे सौ मरले की जगह पचास मरले दे दो—लेकिन जमीन

न[illegible]! [illegible] अभी तो [illegible] में [illegible] नहीं है! मैं भूखा मर रहा हूँ, और अभी [illegible] नहीं है!"

चपरासी अपने हथियार लिये हुए आगे आया—माथे पर त्योरियाँ और आँखों में क्रोध। आस-पास की भीड़ को हटाता हुआ वह उसके पास आ पहुँचा।

"तू [illegible], चल निकल यहाँ से बाहर!" उसने हथियारों की पूरी चोट के साथ कहा। "चल...चल...!"

"सिकन्दर आज यहाँ से नहीं उठ सकता!" वह आदमी अपनी टाँगें मोड़ीं और चौड़ी करके बोला। "सिकन्दर आज यहाँ का वादशाह है। पहले सिकन्दर देश के बेताज वादशाहों की जय बुलवाता था। अब वह किसी की जय नहीं बुलवाता। अब वह खुद यहाँ का वादशाह है...वेलाज वादशाह। उसे कोई लाज-शरम नहीं है। उस पर किसी का हुक्म नहीं चलता। समझे, चपरासी वादशाह?"

"अभी तुझे पता चल जाएगा कि तुझ पर किसी का हुक्म चलता है या नहीं," चपरासी वादशाह और गरम हुआ। "अभी पुलिस के सुपुर्द कर दिया जाएगा तो तेरी सारी वादशाही निकल जाएगी...।"

"हा-हा!" वेलाज वादशाह हँसा। "तेरी पुलिस मेरी वादशाही निकालेगी? तू बुला पुलिस को। मैं पुलिस के सामने नंगा हो जाऊँगा और कहूँगा कि निकालो मेरी वादशाही! हममें से किस-किस की वादशाही निकालेगी पुलिस? ये मेरे साथ तीन वादशाह और हैं। यह मेरे भाई की बेवा है—उस भाई की, जिसे पाकिस्तान में टाँगों से पकड़कर चीर दिया गया था। यह मेरे भाई का लड़का है जो अभी से तपेदिक का मरीज़ है। और यह मेरे भाई की लड़की है जो अब ब्याहने लायक़ हो गयी है। इसकी बड़ी कुँवारी वहन आज भी पाकिस्तान में है। आज मैंने इन सबको वादशाही दे दी है। तू ले आ जाकर अपनी पुलिस, कि आकर इन सब की वादशाही निकाल दे। कुत्ता साला...!"

अन्दर से कई-एक वाबू निकलकर बाहर आ गये थे। 'कुत्ता साला' सुनकर चपरासी आपे से बाहर हो गया। वह तैश में उसे बाँह से पकड़कर घसीटने लगा। "तुझे अभी पता चल जाता है कि कौन साला कुत्ता है!

मैं तुझे मार-मारकर. . ." और उसने उसे अपने टूटे हुए बूट की एक ठोकर दी। स्त्री और लड़की सहमकर वहाँ से हट गयी। लड़का एक तरफ खड़ा होकर रोने लगा।

बाबू लोग भीड़ को हटाते हुए आगे बढ़ आये और उन्होंने चपरासी को उस आदमी के पास से हटा लिया। चपरासी फिर भी बडबडाता रहा। "कमीना आदमी दफ्तर में आकर गाली देता है। मैं अभी तुझे दिखा देता कि. . ."

"एक तुम्हीं नहीं, यहाँ तुम सब-के-सब कुत्ते हो," वह आदमी कहता रहा। "तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूँ। फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो—हम लोगों की हड्डियाँ चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो। मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ। उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ, और उसकी तरफ से भौंकता हूँ। उसका घर इन्साफ का घर है। मैं उसके घर की रखवाली करता हूँ। तुम सब उसके इन्साफ की दौलत के लुटेरे हो। तुम पर भौंकना मेरा फर्ज है, मेरे मालिक का फरमान है। मेरा तुम से अजली वैर है। कुत्ते का कुत्ता वैरी होता है। तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ। मैं अकेला हूँ, इसलिए तुम सब मिलकर मुझे मारो। मुझे यहाँ से निकाल दो। लेकिन मैं फिर भी भौंकता रहूँगा। तुम मेरा भौंकना बन्द नहीं कर सकते। मेरे अन्दर मेरे मालिक का नूर है, मेरे वाहगुरु का तेज है। मुझे जहाँ बन्द कर दोगे, मैं वहाँ भौंकूँगा, और भौंक-भौंककर तुम सबके कान फाड़ दूँगा। साले, आदमी के कुत्ते, जूठी हड्डी पर मरने वाले कुत्ते, दुम हिला-हिलाकर जीने वाले कुत्ते. . !"

"बाबा जी, बस करो," एक बाबू हाथ जोड़कर बोला। "हम लोगों पर रहम खाओ, और अपनी यह सन्तबानी बन्द करो। बताओ तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा केस क्या है. . .?"

"मेरा नाम है बारह सौ छब्बीस बटा सात! मेरे माँ-बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने। अब यही नाम है जो तुम्हारे दफ्तर का दिया हुआ है। मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूँ। मेरा और कोई नाम नहीं है। मेरा यह नाम याद कर लो। अपनी डायरी में लिख लो। वाह-

[illegible]—[illegible] हो जायेगा ।”

“[illegible], आज जाओ, कल फिर आना । तुम्हारी अर्जी पर कार्रवाई तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है...।”

“तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है ! और मैं खुद भी तकरीबन-तकरीबन पूरा हो चुका हूँ ! अब देखना यह है कि पहले कार्रवाई पूरी होती है, कि पहले मैं पूरा होता हूँ ! एक तरफ़ सरकार का हुनर है और दूसरी तरफ़ [illegible] का हुनर है ! तुम्हारा तकरीबन-तकरीबन अभी [illegible] में ही रहेगा और मेरा तकरीबन-तकरीबन कफ़न में पहुँच जायगा । [illegible] ने सरकारी पढ़ाई पढ़ने के बाद दो नये ईजाद किये हैं—शायद और तकरीबन । शायद आपके कागज ऊपर चले गये हैं—तकरीबन-तकरीबन कार्रवाई पूरी हो चुकी है ! शायद से निकालो और तकरीबन में डाल दो ! तकरीबन से निकालो और शायद में गर्क कर दो । 'तकरीबन तीन-चार महीने में तहकीकात होगी ।'...शायद महीने-दो-महीने में रिपोर्ट आयगी ।' मैं आज शायद और तकरीबन दोनों घर पर छोड़ आया हूँ । मैं यहाँ बैठा हूँ और यहीं बैठा रहूँगा । मेरा काम होना है, तो आज ही होगा और अभी होगा । तुम्हारे शायद और तकरीबन के गाहक ये सब खड़े हैं । यह ठगी इनसे करो...।”

बाबू लोग अपनी सद्भावना के प्रभाव से निराश होकर एक-एक करके अन्दर लौटने लगे ।

“बैठा है, बैठा रहने दो ।”

“बकता है, बकने दो ।”

“साला बदमाशी से काम निकालना चाहता है ।”

“लेट हिम बार्क हिमसेल्फ़ टू डेथ ।”

बाबुओं के साथ चपरासी भी बड़बड़ाता हुआ अपने स्टूल पर लौट गया । “मैं साले के दाँत तोड़ देता । अब बाबू लोग हाकिम हैं और हाकिमों का कहा मानना पड़ता है, वरना...।”

“अरे बाबा, शान्ति से काम ले । यहाँ मिन्नत चलती है, पैसा चलता है, धौंस नहीं चलती,” भीड़ में से कोई उसे समझाने लगा ।

वह आदमी उठकर खड़ा हो गया ।

"मगर परमात्मा का हुक्म हर जगह चलता है," वह अपनी कमीज उतारता हुआ बोला। "और परमात्मा के हुक्म से आज बेलाज बादशाह नंगा होकर कमिश्नर साहब के कमरे में जाएगा। आज वह नंगी पीठ पर साहब के डण्डे खाएगा। आज वह बूटों की ठोकरें खाकर प्राण देगा। लेकिन वह किसी की मिन्नत नहीं करेगा। किसी को पैसा नहीं चढ़ाएगा। किसी की पूजा नहीं करेगा। जो वाहगुरु की पूजा करता है, वह और किसी की पूजा नहीं कर सकता। तो वाहगुरु का नाम लेकर ...।"

और इससे पहले कि वह अपने कहे को किये में परिणत करता, दो-एक आदमियों ने बढ़कर तहमद की गाँठ पर रखे उसके हाथ को पकड़ लिया। बेलाज बादशाह अपना हाथ छुड़ाने के लिए संघर्ष करने लगा।

"मुझे जाकर पूछने दो कि क्या महात्मा गाँधी ने इसीलिए इन्हें आजादी दिलायी थी कि ये आजादी के साथ इस तरह सम्भोग करें? उसकी मिट्टी खराब करें? उसके नाम पर कलंक लगायें? उसे टके-टके की फाइलों में बाँधकर जलील करें? लोगों के दिलों में उनके लिए नफरत पैदा करें? इन्सान के तन पर कपड़े देखकर बात इन लोगों की समझ में नहीं आती। शरम तो उसे होती है जो इन्सान हो। मैं तो आप कहता हूँ कि मैं इन्सान नहीं, कुत्ता हूँ...!"

सहसा भीड़ में एक दहशत-सी फैल गयी। कमिश्नर साहब अपने कमरे से बाहर निकल आये थे। वे माथे की त्योरियों और चेहरे की झुर्रियों को गहरा किये भीड़ के बीच में आ गये।

"क्या बात है? क्या चाहते हो तुम?"

"आपसे मिलना चाहता हूँ, साहब," वह आदमी साहब को घूरता हुआ बोला। "सौ मरले का एक गड्ढा मेरे नाम एलाट हुआ है। वह गड्ढा आप को वापस करना चाहता हूँ ताकि सरकार उसमें एक तालाब बनवा दे, और अफसर लोग शाम को वहाँ जाकर मछलियाँ मारा करें। या उस गड्ढे में सरकार एक तहखाना बनवा दे और मेरे जैसे चार कुत्तों को उसमें बन्द कर दे..।"

"ज्यादा बकबक मत करो, और अपना केस लेकर मेरे पास आओ।"

"मेरा केस मेरे पास नहीं है, साहब! दो साल से सरकार के पास

है—उसके पास है। मेरे पास अपना शरीर और दो कपड़े हैं। चार दिन बाद ये भी नहीं रहेंगे, इसलिए इन्हें भी आज ही उतार रहा हूँ। इसके बाद बाकी सिर्फ आदमी का शरीर बस मात्र रह जाएगा। बाद को उस शरीर मात्र को भी साफ-सुथरा कर परमात्मा के हुजूर में भेज दिया जाएगा. . .।"

"यह दरवाजा बन्द करो और मेरे साथ अन्दर आओ।"

और कमिश्नर साहब अपने कमरे में वापस चले गये। वह आदमी भी अपनी कमीज कंधे पर रखे उस कमरे की तरफ चल दिया।

"मैं बरस अखबार लगाता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। खुशामदें करता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी। गाली देता रहा, किसी ने बात नहीं सुनी. . .।"

चपरासी ने उसके लिए चिक उठा दी और वह कमिश्नर साहब के कमरे में दाखिल हो गया। घण्टी बजी, फाइलें हिलीं, बाबुओं की बुलाहट हुई, और आधे घण्टे के बाद बेताज बादशाह मुसकराता हुआ बाहर निकल आया। उत्सुक लोगों की भीड़ ने उसे आते देखा, तो वह फिर बोलने लगा, "चूहों की तरह चिटर-चिटर देखने से कुछ नहीं होता। भौंको, भौंको, सब-के-सब भौंको। अपने-आप सालों के कान फट जाएँगे। भौंको कुत्तो, भौंको. . .।"

उसकी भौजाई दोनों बच्चों के साथ गेट के पास खड़ी इंतजार कर रही थी। लड़के और लड़की के कन्धों पर हाथ रखे हुए वह सचमुच बादशाह की तरह सड़क पर चलने लगा।

"हयादार हो, तो सालहा-साल मुँह लटकाये खड़े रहो। अर्जियाँ टाइप कराओ और नल का पानी पियो। सरकार वक्त ले रही है! नहीं तो बेहया बनो। बेहयाई हजार बरकत है।"

वह सहसा रुका और जोर से हँसा।

"यारो, बेहयाई हजार बरकत है।"

उसके चले जाने के बाद कम्पाउंड में और आस-पास मातमी वातावरण पहले से और गहरा हो गया। भीड़ धीरे-धीरे बिखरकर अपनी जगहों पर चली गयी। चपरासी की टाँगें फिर स्टूल पर झूलने लगीं। सामने के

कैंटीन का लड़का बाबुओं के कमरे में एक सेट चाय ले गया। अर्ज़ीनवीस की मशीन चलने लगी और टिक-टिक की आवाज़ के साथ उसका लड़का फिर अपना सबक़ दोहराने लगा। "पी ई एन पेन—पेन माने कलम; एच ई एन हेन—हेन माने मुर्गी; डी ई एन डेन—डेन माने अँधेरी गुफ़ा...!"